राजा लक्ष्मणसिंह अनुवादित

मेघदूत ।

श्यामसुन्दरदास बी० ए० संपादित ।

—०—

१९२०

इंडियन प्रेस, प्रयाग, द्वारा प्रकाशित ।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the
Indian Press, Allahabad

निवेदन ।

राजा लक्ष्मणसिंह का जन्म ९ अक्टूबर सन् १८२६ को आगरे में हुआ था। पाँच वर्ष की अवस्था में इनका विद्यारम्भ कराया गया और ८ वर्ष तक ये घर पर संस्कृत, हिन्दी और फारसी पढते रहे। यज्ञोपवीत संस्कार हो चुकने पर १३ वर्ष की अवस्था में ये स्कूल में पढने लगे और २० वर्ष की अवस्था में इन्होंने उस समय की सबसे ऊँची परीक्षा में उत्तीर्ण हो कालिज की पढाई समाप्त की। सन् १८५० ई० में ये अनुवादक के पद पर नौकर हुए। पाँच ही वर्ष में ये तहसीलदार नियत हुए। यहाँ इन्होंने इस योग्यता से काम किया कि दो ही वर्षों में ये डिप्टी कलक्टर बना दिए गए। इस पद पर ये निरंतर उन्नति करते गए और अंत में सन् १८८८ में ४००) रु० मासिक की पेंशन लेकर अपने घर आगरे में रहने लगे। इनका देहांत आगरे ही में १४ जुलाई सन् १८९६ को हुआ।

सन् १८५७ के बलवे के समय इन्होंने गवर्मेंट की बडी सहायता की थी। उसके उपलक्ष में इन्हें आगरे के पास ही एक इलाका माफी मिला और २०००) की खिलअत दी गई तथा सन् १८७७ के दिल्ली दुर्बार में राजा की उपाधि अर्पित हुई।

सबसे पहले सन् १८६१ में इन्होंने शकुंतला नाटक का हिन्दी गद्य में अनुवाद किया। इस अनुवाद की बडी प्रशंसा हुई, यहाँ तक कि इँगलैंड में इसका एक संस्करण अँगरेजी में टीका टिप्पणी सहित छप जा अब तक प्राप्य है। पीछे सन् १८८९ में राजा लक्ष्मणसिंह ने इस नाटक का दूसरा संस्करण किया जिसमें गद्य के स्थान में गद्य और पद्य के स्थान में पद्य में अनुवाद हुआ। यह अनुवाद भी बहुत अच्छा हुआ। सच बात तो यह है कि राजा साहब ने इस नाटक के अनुवाद में जैसी सुन्दर, रसीली और सीधी भाषा का प्रयोग किया है वैसी आज तक किसी और की लेखनी से नहीं निकली।

सन् १८७८ में राजा साहब ने रघुवंश का अनुवाद हिन्दी गद्य में किया। यह अनुवाद भी अच्छा हुआ है।

तीसरा ग्रंथ राजा साहब का मेघदूत का पद्यात्मक अनुवाद है। सन् १८८२ में इस ग्रंथ के पूर्वार्द्ध का अनुवाद प्रकाशित हुआ और सन् १८८४ में संपूर्ण ग्रंथ का। इसके अनन्तर सन् १८९३ में इस ग्रंथ का तीसरा संस्करण राजा साहब ने छपवाया। अब यह ग्रंथ एक प्रकार से अप्राप्य है। कठिनता से कहीं कहीं इसकी प्रति देखने को मिल जाती है। यद्यपि मेघदूत के अनेक अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं और बराबर प्रकाशित होते जाते हैं पर इस बात के कहने में कोई भी संकोच नहीं होता कि राजा साहब का अनुवाद बहुत ही अच्छा हुआ है और कई बातों में इसकी समता दूसरे अनुवाद नहीं कर सकते।

इन तीन ग्रंथों के अतिरिक्त राजा साहब ने "प्रजाहित" नाम का एक पत्र निकाला था और "दंड-संग्रह" नाम से ताजीरात हिन्द का हिन्दी में अनुवाद किया था। गवर्मेंट के लिए इन्होंने कई अन्य ग्रंथों का अनुवाद भी किया है, परन्तु राजा साहब की उत्कृष्ट कृतियों में से केवल शकुंतला, रघुवंश और मेघदूत के अनुवाद हैं जो हिन्दी संसार में उनकी कीर्ति को बनाए रखने के लिये अलम् हैं।

यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी गद्य को एक स्थिर रूप देकर उसको परिष्कृत और प्रसाद-गुण-सम्पन्न बनाया परन्तु लल्लूलाल के पीछे राजा लक्ष्मणसिंह ने ही उसके नए रूप को काट छाँट कर सुन्दर और मनोहर बनाया। हिन्दी गद्य को उत्कृष्ट रूप देने का यश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को प्राप्त है पर इसमें संदेह है कि यदि राजा लक्ष्मणसिंह अपनी लेखनी द्वारा उसे एक उत्तम रूप न दे गए होते तो भारतेन्दुजी को अपने उद्योग में इतनी सफलता प्राप्त होती।

लखनऊ
१—१०—१७

श्यामसुन्दरदास

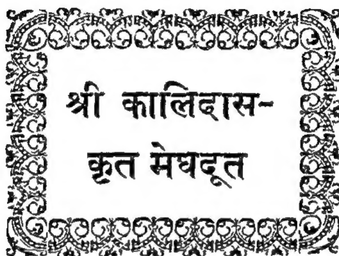
प्रथम भूमिका।

उपमा अलंकार में कालिदास से बढ़कर अब तक कोई कवि भारत वर्ष में नहीं हुआ और उनके ग्रंथों में मेघदूत भी इसी अलंकार की उत्कृष्टता के कारण सराहने योग्य गिना जाता है। इस छोटे से काव्य को पढ़कर पढ़नेवाले के चित्त पर अंक सा हो जाता है कि विधाता ने कालिदास को कितनी बड़ी कल्पनाशक्ति दी थी। मनुष्य की प्रकृति जानने और स्थान का वर्णन करने और स्वभाव का लालित्य दिखाने में यह कवि एकही हुआ है। मेघदूत का अवलोकन करने से ये उत्तम गुण कालिदास के भली भांति दीखते हैं। उनके वाग्विलास की बड़ाई जितनी की जाय थोड़ी है। इस काव्य का प्रकरण सक्षेप से यह है कि कोई यक्ष अपने काम में असावधान हो गया। तब उसके स्वामी कुबेर ने कोप कर उसे बरस दिन के लिए देशनिकाला दिया। इस शाप के बश वह अलकापुरी को छोड़ दक्खिन में रामगिरि पर्वत पर अकेला जा रहा। जब उस पहाड़ में रहते कुछ दिन बीत गये और असाढ़ का बादल उमड़ा, उस विरही को अपनी स्त्री की बहुत सुधि आई, उसने मन में सोचा कि प्यारी के पास कुछ कुशल का सँदेसा भेजना चाहिए। बादल के सामने खड़ा हुआ इसी सोच-विचार में था कि प्रेम की अधिकता में विह्वल हो गया, बादल ही को दूत बनाकर अलकापुरी का मार्ग बताने और अपना सँदेसा सुनाने लगा। रामगिरि से अलका तक जो जो नदी और पहाड़ और तीर्थ और मुख्य मुख्य नगर और देश हैं उनका थोड़ा थोड़ा पता देता गया है। पहले ६५ श्लोकों में अलका तक पहुँचाया है इसी का नाम "पूर्वमेघ" है, फिर "उत्तरमेघ" के ५१ श्लोकों में अलकापुरी की शोभा और यक्षिणी की दशा वर्णन करके अपना सँदेसा बतलाया है। निदान जब बादल से

कहे हुए सँदेसे का वृत्तान्त कुवेर के कान तक पहुँचा उसने दयालु होकर यक्ष का अपराध क्षमा किया और स्त्री-पुरुष का संयोग बरस दिन बीतने से पहले ही करा दिया ॥

हमने हिन्दी छन्दों में यह उलथा अभी पूर्व्वमेघ का किया है, परन्तु विचार है कि यदि अवकाश मिला तो उत्तर का भी करेंगे । एक भाषा के छन्द को दूसरी भाषा के छन्द में उलथा करना कुछ तो आपही कठिन होता है तिस पर हमारा नियम है कि मूल से उलथा न्यूनाधिक न हो और भाव में भी कुछ विरोध न आवे । इसी से कठिनाई अधिक दीखती है । फिर भी हम आशा करते हैं कि हमारे इस तुच्छ आरम्भ को देखकर कोई हिन्दी भाषा को अल्पता का दोष न देगा किन्तु विदित होगा कि यह भाषा बड़े विस्तार की है ॥ इति शुभम् ॥

२४ जून १८८२ ई० ।


श्री कालिदास-
कृत मेघदूत

॥ श्री ॥

मेघदूतपूर्व्वार्द्धम्

मन्दाक्रान्तावृत्तम् ।

कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्त
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येन भर्त्तु ॥
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्य्याश्रमेषु ॥१॥
तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्त. स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठ ॥
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानु
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीय ददर्श ॥२॥
तस्य स्थित्वा कथमपि पुर केतकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यो ॥

---

१ यक्ष =देवयोनिविशेष । विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्व्वकिन्नरा ।
पिशाचो गुह्यक सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय ॥

२ प्रथमदिवसे = पाठान्तरे "प्रशमदिवसे" ॥

३ केतकाधानहेतु = केतक्या गर्भाधानस्य कारणम् ॥



॥ श्री ॥

मेघदूत पूर्वार्ध

—०—

सवैया

कारज में उनमत्त भएँ एक जक्ष दई सब खोइ बड़ाई।
जोय तें दूर रहै बरसेक लौं सोह बड़ी निज नाथ सजाई॥
आय बस्यो गिरि राम के आश्रम रूख घनेन में गेह बनाई।
जानकी न्हानन पुन्य प्रताप भई जहँ नीरन में पवितांई॥
बसि ताहि महीधर में बिरही कितने एक मास बिताइ गयो।
भुजबंद गए गिर सोरन के इतनो थकि दूबर गात भयो॥
फिर लागत मास असाढ लख्यो घन शैल पै सोहनो आइ छयो।
झुक के मनहू गजराज बली गढढावन खेल मचाइ रह्यो॥
तिहि केतकी फूल फुलावनहार के सन्मुख दास कुबेर गयो।
उर अन्तर में अँसुवा भर के बड़ी बेर लौं सोचत ठाढो रह्यो॥

---

१ यक्ष एक प्रकार के उपदेवता हैं जिनका स्वामी कुबेर है। एक यक्ष अपने काम में उन्मत्त होकर अपराधी ठहरा। कुबेर ने कोप कर उसे बरस दिन का देशनिकाला दिया। इससे उसकी सब बड़ाई जाती रही। शाप के वश घरबार छोड़ यह रामगिरि पर्वत पर जहाँ बनवास के समय श्रीजानकीजी कुछ दिन रही थीं और उनके स्नानों से वहाँ के जल पवित्र हुए थे, शीतल छाँह में घर बनाकर जा बसा॥

२ उस पहाड में रहते जब कुछ महीने बीत गए तो वह बिरह के दुःख में इतना दुबला होगया कि बाँह में भुजबंद भी न ठहरे। असाढ लगते ही उसने पहाड के सानु पर छाया हुआ बादल ऐसे देखा मानो कोई बडा हाथी झुककर गढ़ी का परकोटा ढाह रहा है॥

३ केतकी सावन भादों में फूलती है इसलिए बादल उसके गर्भ का कारण कहलाता है। उस बादल के सन्मुख खडा होकर यक्ष बहुत बेर तक कुछ सोचता

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किम्पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीविताालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ॥
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ॥
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

---

४ जीमूतेन = जलधरेण ॥

अर्घ = आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्पिश्च तण्डुलाः ।
यवाः सिद्धार्थकं चैव अष्टाङ्गार्घ्यं प्रकीर्त्तितम् ॥

अपि च

रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्वाङ्कुरैस्तिलैः ।
सामान्यः सर्व्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्त्तितः ॥

चित कठ लगे सुखियानहु को न रहे थिर देखत मेघ नयो।
फिर बात कहा उनकी कहिये जिन मीत तें दूर बसेरो लयो॥
४ सावन आइ समीप लख्यो तब नारि के प्रान बचावन काज।
बादर दूत बनावन को कुशलात सँदेस पठावन काज॥
कुटजफूल नए कर लै मनकल्पित अर्घ बनावन काज।
बोल उठ्यो हँसते मुख है वह मेघ तें प्रीति बढ़ावन काज॥

घनाक्षरी

५ धाम धूम नीर औ समीर मिले पाई देह
ऐसो घन कैसे दूतकाज भुगतावेगो।
नेह को सँदेसो हाथ चातुर पठैवे जोग
बादर कहो जी ताहि कैसे के सुनावेगो।
बाढ़ी उत्कठा अक्ष बुद्धि बिसरानी सब
वाही सो निहोरतो जानि काज कर आवेगो।
कामातुर होत हैं सदाई मतिहीन तिन्हें
चेत औ अचेत माहँ भेद कहाँ पावेगो॥

रहा। इस पर कवि कहता है कि घटा उमटने के समय संयोगियों का भी चित्त ठिकाने नहीं रहता फिर वियोगियों की क्या दशा न होनी चाहिए॥

४ जब सावन आया यक्ष ने जाना कि यक्षिणी विरह की ताप में मर जायगी इसलिए उसके पास अपनी कुशल का सँदेसा भेजना चाहिए। यह सोचकर मन में ठाना कि बादल के हाथ सँदेसा भेजूँगा। बादल को आदर देने के लिए वन के कुछ फूलों का अर्घ हाथ में ले वह हँसते मुख प्रीति मिली बातें कहने लगा॥

५ बादल तो धूप और धूआ और पानी और पवन मिलकर बनता है और प्रेम का सदेसा लेजाने को बड़ा चतुर मनुष्य चाहिए, परंतु इस यक्ष को अपने चाव में न सूझा कि बादल क्योंकर सँदेसा पहुँचावेगा। इस पर कवि कहता है कि काम के सताये पुरुष स्वभाव ही से मूर्ख होते हैं, चेत औ अचेत में भेद

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रातपत्रां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ।
आकैलासाद्बिसकिशलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपयुज्य ॥ १३ ॥

---

११ उच्छिलीन्ध्रातपत्राम् = शिलीन्ध्र एव छत्रं यस्याः ताम् ॥
बिसकिशलयच्छेदपाथेयवन्तः = मृणालाग्राणां छेदं शकलैः पाथेयवन्तः ॥

नेही हिरदो नारि कौ कोमल जैसो फूल ।
विरह माँहि आसा करति ताहि कछुक दृढमूल ॥
१ छत्रवती छिति कों करति उच्छिलिंध्र उपजाइ ।
सो गरजन तेरी सुनत राजहंस हुलसाइ ॥
मानसरोवर चलन को कमलनाल लै पाथ ।
उड़िहैं धुर कैलासलों गगनपथ तो साथ ॥
२ माँगि सीख गिरितुंग पै अब मीतहिं भरि अंक ।
पावन रघुपति चरण सों अंकित जाको लंक ॥
जन जब तू यातें मिलत बहुत दिनन में आइ ।
प्रीति प्रगट तो में करत ताती भाप उठाइ ॥

कुंडलिया

३ गैल बताऊँ मेघ अब जिहि चलि पावै चैन ।
फिर सुनियो संदेस मम कानन अति सुखदैन ॥

अर्थात् मेरी स्त्री को जीती पावेगा । वह मेरे शाप के दिन गिनती होगी । स्त्री के कोमल हृदय को विरह में आसा ही कुम्हलाने से बचाती है ॥

१ बादल की गरज से उच्छिलींध्र अर्थात् खुमी उपजती है मानो पृथ्वी को छत्र मिलता है, ऐसी गरज सुन कर राजहंसों को मानसरोवर जाने का उत्साह होगा । मार्ग में खाने के लिए कमलनाल का पाथ अर्थात् तोसा लेकर कैलास तक वे तेरे साथ आकाश में उड़ते हुए जायँगे ॥

२ अब तू इस ऊँचे पहाड़ से भेंट कर और सीख माँग कर अलकापुरी को चल दे । इसकी पीठ पर श्रीरामचन्द्र के पुनीत चरणों के चिन्ह हैं और यह तेरा पुराना मित्र है । बरस बरस दिन पीछे जब तू इससे मिलता है यह तत्ती भाप निकालता है मानो प्रीति के तत्ते आँसू गिराता है (तत्ते आँसू प्रीति के और ठंढे शोक के होते हैं) । मेघ की और पर्वत की आपस में सहज मित्रता कवि लोग बाँधा करते हैं । आगे इस मेघदूत में कई जगह यह मित्रता दिखाई जायगी ॥

३ हे मेघ अब मैं पहले तुझे अलकापुरी का मार्ग बताता हूँ जिसमें चल कर तू सुख

अद्रे श्रृङ्गं वहति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभिः
दृष्टोत्साहश्चकितचकित मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ॥
स्थानादस्मात् सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः ख
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् ॥ १४ ॥

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनु खण्डमाखण्डलस्य ॥
येन श्याम वपुरतितरां कान्तिमालप्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णो ॥ १५ ॥

---

१४ सरसनिचुलात् = आर्द्रस्थलवेतसा यस्मिन् तस्मात् ॥
दिङ्नागानां = दिग्गजानाम् ॥
ऐरावत पुण्डरीको वामन कुमुदोऽञ्जन ।
पुष्पदन्त सार्व्वभौम सुप्रतीकश्च दिग्गजा ॥
अवलेपान् = गर्व्वान् ॥
१५ आखण्डलस्य = इन्द्रस्य ॥

कानन अति सुखदैन थके वा मग में जब तू।
चलियो धरि धरि पाँव शिखर ऊँचिन पे तब तू॥
भूख लगे सोता मिलें उथरे अरु विन मेल।
पी तिन को पानी तुरत लीजो अपनी गैल॥

१४ जात तोहि ऊपर निरखि कहिहैं सीस उठाइ।
मुग्धा सिद्धवधू चकित आपस में बतराइ॥
आपस में बतराइ बडो अचरज को लेखो।
पवन उडाए जात खंड परवत को देखो॥
निचुलसरस यह भूमि तजि अब उत्तर चलि भ्रात।
मेटत मद दिग्गजन के नभमारग में जात॥

१५ सोहत पूरब ओर यह रतनजाल अनुमान।
निकसत बाँबी ते भलो इंद्रचाप रुचदान॥
इंद्रचाप रुचदान जासु मिलि तो तन कारो।
पावत है छबि अधिक लगत नैनन को प्यारो॥
मोरचंद्रिका संग सुभग जैसे मन मोहत।
गोपवेष गोविंद बहुत स्यामल तन सोहत॥

पावेगा फिर अपना सँदेसा सुनाऊँगा। बस मार्ग में जो तू थक जाय तो पहाडो की शिखर पर पाँव धर कर विश्राम करता हुआ चलियो और भूख लगे तो उथले सोतों का निर्मल जल पी लीजो॥

१४ आकाश में तुझे जाता हुआ देख कर सिद्धों की मुग्धा स्त्रियाँ आपस में चकित सी होकर कहेंगी कि क्या यह परवत का टुकडा है जिसे पवन उडाये लिये जाता है (सिद्ध एक प्रकार के देवता हैं जो आकाश में रहते हैं)। अब तू इस आले स्थान से जहाँ बेत उपजते हैं उत्तर को चल और दिग्गजों को जो अपने बडे शरीर का घमंड है वह घमंड उनका तुझे देख कर मिट जायगा क्योंकि वे जानेंगे कि यह हमसे भी बडा आया॥

१५ लोकप्रसिद्ध बात है कि इंद्रधनुष साँप की बाँबी से निकलता है। ऐसा ही कालिदास भी कहते हैं और उपमा देते हैं कि काला बादल रंग बिरंगे धनुष से वह शोभा पावेगा जो मोरचंद्रिका से श्रीकृष्ण का स्याम शरीर पाता था॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविकारानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ॥
सद्यस्सीरोत्कषणसुरभिक्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित् पश्चाद्व्रज लघुगतिः किञ्चिदेवोत्तरेण ॥ १६ ॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ॥
नक्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किम्पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ॥
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवश्शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

---

१६ त्वय्यायत्तं = त्वयि आयत्तं = ते अधीनम् ॥
भ्रूविकारानभिज्ञैः = भ्रुकुटिविलासानामज्ञातृभिः ॥

१७ वनोपप्लव = दवाग्निम् ॥

१८ अमरमिथुनप्रेक्षणीयां = खेचरदम्पतीदर्शनीयाम् ॥

१६ करके दृग ऊँचे लखें भोरे भरे पियार ।
ग्रामबधू तुहि जानके खेतीफल दातार ॥
खेतीफल दातार पहुँचियो मालभूमि पर ।
नए जुते जहँ खेत सुगंधित होइ अधिकतर ॥
कछु पच्छिम दिसि पलटि शीघ्र गति तन में धर के ।
चलियो जलधर मीत फेर उत्तर मुख करके ॥

सोरठा

१७ अम्रकूट तनताप मेटी तैं बहुधा बरसि ।
सो धरिहै सिर आप तो मारग के थकित को ॥
मीतहि आप द्वार विमुख होत नहि नीचहू ।
सुमिरि प्रथम उपकार ऊँच विमुख कब ह्वै सके ॥
१८ रह्यो चहूँ दिसि छाइ पके आम घन शैल यह ।
ता सिर जब तू जाइ बैठे चिक्कन चिकुर रँग ॥
तुरत लहै छवि सोइ जोग देवदम्पति लखन ।
मनहु स्यामता होइ गोरे भूमि उरोज बिच ॥

---

१६ हे मेघ तुझे गाँव की स्त्रियाँ यह जानकर कि खेती का फल तेरेही अधीन है, नेह भरी आँखों से जो भौंह चलाना नहीं जानती हैं देखेंगी । तू मालदेश को जाना जहाँ नए जुते खेतों से सुहावनी सुगंध निकलती होगी । फिर थोड़ासा पच्छिम की ओर पलटकर तुरन्त उत्तर को चल दीजो ॥

१७ तैने मेंह बरसा कर बहुत बार अम्रकूट पर्वत की ताप मिटाई है इसलिये जब तू मारग का थका हुआ उसके पास पहुँचेगा वह तुझे अपने सिर पर रख लेगा क्योंकि जिसने कुछ उपकार पहले कर लिया हो उसे द्वार पर आए नीच भी आदर देते हैं फिर ऊँचों का तो क्या कहना है ॥

१८ यह पहाड़ पके आमों से छाया हुआ पीला दीखता होगा । उसकी शिखर पर जब तू चिकनी बेनी के समान काला जाकर बैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो पृथ्वी के पयोधर में श्यामता है । इस शोभा को देवता अपनी स्त्रियों सहित देख के प्रसन्न होंगे ॥

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः ॥
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्नि
सद्भावार्द्रः फलति नचिरेणोपकारो महत्सु ॥ १९ ॥

स्थित्वा तस्मिन् वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्त्तं
तोयोत्सर्गाद्द्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ॥
रेवा द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥ २० ॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ॥
अन्तस्सारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २१ ॥

---

१९ नैदाघम् = निदाघर्तुभवम् ॥ (निदाघः ग्रीष्मः) ॥

२० रेवा = नर्म्मदा ॥
रेवा तु नर्म्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका इत्यमरः ॥
भक्तिच्छेद = रेखारचना ॥

२१ तिक्तैः = सुगन्धिभिः ॥
वासितं = सुरभितम् ॥
प्रतिहतरयं = प्रतिरुद्धो वेगो यस्य तत् ॥

थक्यो पथ चलि गात निकट रहे जब जाय तू।
चित्रकूट विख्यात ऊँचे सिर तुहि धारिहै॥
करियो धारासार हरन तासु ग्रीषम-अगिनि।
सज्जन सँग उपकार फलत विलंब न कछु करे॥
बिलमि तहाँ कछु बार विहरति जहँ वनचर वधू।
करियो धारासार फिर द्रुतगति मग लाँघियो॥
लखियो रेवा जाइ बिंध्यशिलन पै यो बहै।
मानहु दई रचाइ गजतन रजरेखा बिशद॥

चैापाई

लै चलियो वा नदि के नीरा। जमुनीकुंजन रुकि भए धीरा॥
वन हाथिन जिन में मद त्यागे। अधिक सुगंधित तिन हित लागे॥
अंतर जब तेरौ भरि जाई। पवनहु रोकि न तोहि सकाई॥
रीते सबहि तुच्छ जग माहीं। बिन पूरनता गैारव नाहीं॥

चित्रकूट पर्वत भी तुझे थका देख कर अपने सिर पर उठावेगा फिर तू तुरत पानी बरसा कर निदाघ अग्नि के मिटावेगा क्योंकि सज्जन के साथ जो भलाई की जाय उसका फल तुरत मिलता है (निदाघ = जेठ असाढ़ की धूप)॥ जिसकी कुंजों में वनवासी लोगों की स्त्रियाँ बिहार करती हैं उस पहाड़ में थोड़ी बेर ठहर कर और जल बरसने से शीघ्रगति होकर तू मार्ग उलाँघियो। आगे तुझे रेवा (नर्मदा) नदी मिलेगी जो विंध्याचल में बहती हुई दूर से ऐसी दीखती है मानो हाथी के शरीर में श्वेत मिट्टी की लकीरों से सिँगार किया है॥

उस रेवा नदी का जल जामुन के रूखों में रुक रुक कर धीरे धीरे चलता है और वन के हाथी उसमें नहाते हैं। उनके मद से सुगंधित उस जल के पीकर तू आगे चलियो। जल पीने से तू भारी हो जायगा इसलिए मार्ग में तुझे पवन न रोक सकेगी॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्द्धरूढैः
आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ॥
दग्धारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
शारङ्गास्ते जललवमुच सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २२ ॥

अम्भोबिन्दुग्रहणरभसांश्चातकान् वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ॥
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥ २३ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासो
कालक्षेप ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ॥
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २४ ॥

---

२३ वीक्षमाणा = कौतुकात् पश्यन्त ॥

२४ ककुभसुरभौ = अर्जुनसुगन्धिनि ॥
केका = केका वाणी मयूरस्य ॥
प्रत्युद्यात = कृतातिथ्य ॥

२२ देखि कदंब सुमन मन भाए। हरित स्याम मकरंद सुहाए॥
कूलन माहिं निरखि कंदलिका। नवकुसुमित बहु सुंदर कलिका॥
दावानल भसमित कानन में। भूमि सुगंध सूँघि मुद मन में॥
मोर जलद तुहिं आदर देहैं। आगे उड़ि उड़ि पथ दिखैहैं॥
२३ सिद्ध निरखिहैं तो सँग आवत। चातक वारिबूँद रट लावत॥
बगपाँती एकलँग लखि लेहैं। गिनती कर कर तियन दिखैहैं॥
सो तिय सुनत घोर घन तेरी। काँपि चौंकि अकुलायँ घनेरी॥
अंक लगाय बलम सुख पावें। बहु भाँतिन तेरे गुन गावें॥
२४ यद्यपि मम प्यारी हित लागे। तू चहे चलन मंदगति त्यागे॥
तदपि डरों कहुँ बिलमि न जाई। ककुभसुगंधित शैलन भाई॥
सुनि आदरयुत बोल शिखिन के। सजल नेन कोये सित जिनके॥
का बिधि तुरत गमन होइ तेरो। इहि शंका व्याकुल मन मेरो॥

---

२२ तेरे बरसने से कदंबों में काले पीले रङ्गों के फूल लगेंगे, कछारों में कंदली, कल्यायँगी, दावानल से जले हुए बन में सुगंध उठेगी। इनको देख और सूँघ कर मोर मगन होंगे और तेरे आगे उड़ उड़ कर मार्ग दिखावेंगे [बादल की और मोर की सहज मित्रता है]॥

२३ सिद्ध जात के देवता [जो आकाश में रहते हैं] तेरे साथ आते हुए मेह की बूँद का रस लेनेवाले पपीहे को बड़े चाव से देखेंगे और बगलों की पंक्ति को गिन गिन कर अपनी स्त्रियों को दिखावेंगे। तेरी गरज से डरती चौंकती हुई उन्हीं स्त्रियों को कंठ लगाकर वे तेरे गुन गावेंगे॥

२४ हे मेघ तू मेरी प्यारी के पास सँदेसा पहुँचाने को यद्यपि शीघ्र जाना चाहेगा फिर भी मुझे डर है कि पहाड़ों में ककुभ [अर्जुन] की अच्छी सुगंध सूँघ कर तू कहीं ठहर न जाय और यह भी डर है कि श्वेत और सजल कोयोंवाले मोरों की आदरभरी कूक सुनकर तेरा तुरत चलना क्योंकर होगा॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैस्सूचिभिन्नैः
नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ॥
त्वय्यासन्ने फलपरिणतिश्यामजम्बूवनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २५ ॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमतिमहत् कामुकत्वस्य लब्धा ॥
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादुयुक्तं
सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्म्मि ॥ २६ ॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्सम्पर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ॥
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २७ ॥

---

२५ नीड = पक्षिगृहम् ॥
दशार्णा = नाम देश ॥

२६ फलमतिमहत् = "कामिनामधरास्वाद सुरतादतिरिच्यते" इति भावः ॥

२७ नीचैराख्य गिरिम् = नीचगिरिम् ॥

१ पहुँचि दशारन अब तू जाई। कछु दिन हंस बसें तहँ भाई॥
कलित केतकी जहँ मन मोहैं। उपवन सीम पडुरँग सोहैं॥
नीड समय पंछी बहु आवें। रस्थन माहिँ कलोल मचावें॥
स्याम बरन सुदर दुतिमता। जमुनीफल पकि मे बन श्रता॥
१६ विदिशा नाम तहां रजधानी। देश देश विख्यात बखानी॥
ता ढिँग पहुँचि जबहि तू जैहै। रसबिलास को अतिफल पैहै॥
बेत्रवती तट गरजत धीरा। लीजो मधुर तरंगित नीरा॥
मनहु कुटिल भ्रकुटीयुत मुख तें। अधरामृत लीनो अति सुख तें॥

सवैया

२७ है विदिशा ढिग नीचगिरी करियो बिसराम तहाँ घन जाइ के।
तोहि मिलें रुचिहै पुलकात सो आछे कदंब के फूलन छाइ के॥
बेस्यन के अँगराग की गंधि गुफान तें ध्यारि के संग उड़ाइ के।
देहै बताइ बिहार करें यहाँ नागर छैल नए नए आइ के॥

---

२१ तेरे पहुँचने से दशारन देश में कुछ दिन हंस ठहरेंगे। उस देश में केतकी बहुत होती हैं। उनके फूलों से बागों की सीमा पीली दीखेंगी। गांव के निकट के रूखों में घोंसला बनाने के दिनों पखेरू कलोल करेंगे, जामुन के पके फलों से वन के किनारे स्याम दिखाई देंगे॥

२६ दशारन की राजधानी विदिशा (अर्थात् भेलसा) है जहाँ बेत्रवती नदी बहती है। तू मंद मंद गाज कर उस तरंगित नदी का जल ऐसे लेगा मानो भौंह चढ़ाती हुई नायिका का अधरामृत नायक ने लिया और यही रसनाविलास का उत्तम फल है (कामिनामधरास्वादः सुरतादतिरिच्यते)॥ कवि लोग मेघ को नायक और नदी को नायिका बाँधा करते हैं॥

२७ विदिशा के निकट नीचगिरि नाम पर्वत है। उस पर तू विश्राम लीजो। वह फूले हुए कदंबों से ऐसे दीखेगा मानो तेरे मिलाप से पुलकित है। उसकी गुफाओं से वेश्याओं के अंगराग की सुगंधि निकलती है। इससे जाना जायगा कि नगर के छैला यहाँ आ आकर विहार करते है॥

विश्रान्तः सन् व्रज नगनदीतीरजातानि सिञ्चन्
उद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ॥
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात् क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ २८ ॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ॥
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २९ ॥

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्त्तनाभेः ॥
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ ३० ॥

२८ पुष्पलावी = पुष्पावचायिका ॥

२९ उज्जयिनी स्याद्विशालाऽवन्ती पुष्पकरण्डिनी ॥

३० निर्विन्ध्या = नाम नदी ॥
विभ्रम = विलास ॥

ठैर कै नेरू तहाँ चलियो वरसावत नीर नई बुँदियान तें।
सींचत नाग नदी तट बागन छाइ चमेली रहीं कलियान तें।
द्वै छिन छाँह कै दान सखा करियो पहचान तू मालिनियान तें।
कान के फूल गए जिनके कुम्हलाइ से पोंछत स्वेद मुखान तें॥
तो दिश उत्तर चालनहार के मारग केतोहु फेर परे किन।
पै उज्जयनि के आछे अटा पर से विन तू चलियो कितहू जिन।
चंचल नैन वहाँ अबलान के बिज्जुछटा चकचोधे करे छिन।
जो न लख्यो उन नेनन तू हकनाहक देह धरेही फिरे गिन॥
रस बीच में ले चलियो निरबिन्ध को जो मग तेरो निहारती है।
कटि किंकिन मानो विहगम पाँति तरंग उठे झनकारती है।
मन रञ्जन चालि अनोखी चले अरु भौंर की नाभि उघारती है।
पतरान है मीत सो आदि यही तिय विभ्रम मोहनी डारती है॥

वहाँ थोड़ी देर ठहर कर तू नग नदी तीर के बगीचा में चमेलियो को अपनी नई बूँदों से सींचता हुआ चलियो। दुपहरी में मालिन फूल बीनती होंगी, मुख का पसीना पोंछते पोंछते कानो पर रक्खे हुए फूल के गहने उनके कुम्हला गए होंगे, तेरी छाया पड़ने से सुख पाकर वे तेरा गुन मानेंगी॥

तू अलकापुरी को जानेवाला है। वह उत्तर दिशा में है। उज्जयिनी होकर जायगा तो कुछ फेर पड़ेगा परंतु फेर पड़े तो पड़े उस नगरी को देखे बिना मत रहियो। वहाँ स्त्रियों के नेत्र बड़े चंचल हैं। तेरी बिजली से चैांधकर अधिक शोभायमान हो जावेंगे। जो उन नेत्रों ने तुझे न देखा तो तेरा देह धरना ही अकारथ है॥

मार्ग में निर्विन्ध्या नदी मिलेगी। उसके तट पर जो हंसों की पंक्ति बैठी है सोई मानो उसकी कमर की तागड़ी है, हंसों का बोलना है सोई तागड़ी के घुँघुरुओं की झनकार है, उसकी चाल भी अनोखी है अर्थात् चक्कर खाकर चलती है और उसमें भँवर पड़ता है सोई मानो तुझे ललचाने को वह अपनी नाभि दिखाती है, क्योंकि स्त्री का हाव भाव ही प्रीतम के साथ पहला वार्त्तालाप होता है॥

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ॥
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥३१॥

प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ॥
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत् खण्डमेकम्

---

३१ सिन्धु = नाम नदी ॥
व्यञ्जयन्ती = प्रकाशयन्ती ॥

३२ अवन्तीम् = उज्जयिनीम् ॥
उदयन = नाम राजा, वत्सराज इति प्रसिद्ध ॥
पूर्वोद्दिष्टां = पूर्वोक्ताम् ॥
श्रीविशालां = सम्पत्तिमहतीम् ॥
विशालां पुरीं = उज्जयिनीम् ॥

जल सूखत सिंधु भई पतरी तन बेनी सरीखे [illegible] है ।
तटरूखन तें झरें पात पके छबि पीरी मनो [illegible] है ।
धरि सोहतो रूप वियोगिनि को यह तामें सुहाग [illegible] है ।
करियो घन सो विधि जाके लिये तनछीनता जो [illegible] है ॥

घनाक्षरी

३२ ख्यात है अवती जहां केतेक निवास करें
पंडित जानिया उदयन की [illegible] है ।
जाइ के तहां प्रवेश कीजो या विशाला [illegible]
देख लीजो शोभा माउ [illegible] [illegible] है ।
भूमि तें गए जो नर देवलोक भोगिबे को
करि करि काज बड़े धर्म को [illegible] है ।
तेई फेरि आए संग सारभाग स्वर्ग [illegible]
प्रबल प्रताप मनो [illegible] पुरन्दर है ॥

---

३१ आगे सिंधु नदी मिलेगी जो तेरे लिए [illegible] [illegible] है, [illegible] माग बीत चुका है इससे सूखकर पतली [illegible] है [illegible] बांधी है । तट के रूखों से पीले पत्ते गिरते हैं, [illegible] जैसा वियोगिनियों का होता है । तू [illegible] की दुर्बलता मिट जाय ॥

३२ उदयन नाम एक बड़ा प्रतापी राजा [illegible] हुआ है । [illegible] प्रसिद्ध है । इन कथाओं के जाननेवाले [illegible] है । [illegible] नगरी में विशाला नाम मुख्य स्थान है, [illegible] शोभा देख लेगा । वह ऐसी उत्तम है [illegible] अच्छे लोग स्वर्ग भोगकर अपने [illegible] पृथ्वी पर [illegible]

दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ॥
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥२३॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपैः
बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ॥
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखिन्नान्तरात्मा
त्यक्त्वा खेदं ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥२४॥

---

२३ शिप्रा = नाम नदी ॥

२४ जालोद्गीर्णै = गवाक्षमार्गनिर्गतैः ॥
केशसंस्कारधूपैः = वनिताकेशवासनार्थैर्गन्धद्रव्यधूपैः ॥

१३ प्रातकाल फूले नित्त कञ्जन तें भेंटि भेंटि
रञ्जन हिये कौ होत गंध सरसानो है।
दीरघ करत मदमाते बोल सारस के
सुरन रसीले सुने कान सुख मानो है।
एते गुन साथ तात सिपरा नदी कौ वात
पीतम समान बीनती में अति स्यानो है।
सुरतग्लानि हरत सोई तहाँ नारिन की
गातहितकारी जात याही तें बखानो है॥

१४ उडत झरोखन तें केशगंध धूप वहाँ
होई अंग तेरो पुष्ट मेघ वाहि पीजो तू।
देखि तोहि बार बार नाचेंगे घरेलू मोर
प्रीति सतकार मीत सोई मान लीजो तू।
सोंधे होइँ फूलन तें मंदिर अवंतिका के
चेन थके गातन कौ नेक तहाँ दीजो तू।
ललित तियान पाँव रंजित महावर तें
अंकित अटान जाइ बिसराम कीजो तू॥

---

१३ वहाँ सिपरा नदी का पवन प्रात काल खिले कमलों से मिलकर सुगंधित होता है। सारसों (रसिकों अथवा हंसों) की कूक बढ़ाता है, स्त्रियों के शरीर से लग कर पसीने सुखाता है, ये गुन उसमें ऐसे हैं जैसे चतुर नायक में होते हैं॥

१४ अवंती के महलों में स्त्रियाँ अपने केशों को अगर चंदन इत्यादि के धुएँ से सुगंधित करती हैं। वही धुआँ झरोखों से उड़ता है, उसे तू पी लेगा तो तेरा शरीर पुष्ट हो जायगा। पालतू मोर तुझे आदर देने के लिए नाचेंगे, वहाँ फूलों से महल महक रहे हैं, चतुर स्त्रियों के महावर लगे पैरों के चिह्न अटों की छत पर लगे हैं, उन्हीं छतों पर तू बिसराम कीजो॥

भर्त्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डेश्वरस्य ॥
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्याः
तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३५ ॥

अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ॥
कुर्वन् सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम्
आमन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥ ३६ ॥

३५ चण्डेश्वर = चण्डाया ईश्वर अर्थात् पार्व्वतीपति ॥
गन्धवती = नाम नदी ॥

३६ महाकाल = महाकालाख्यं स्थानम्
आकाशे तारकं लिङ्गं पाताले हाटकेश्वरम् ।
मर्त्यलोके महाकालं दृष्ट्वा काममवाप्नुयात् ॥
आमन्द्र = ईषद्गम्भीरम् ॥

५ जइयो तू फेर मीत पावन पुनीत ठाँव
　　चडेश्वर धाम तीन लोक अधिकारी के।
नाथ के गरे की छबि देखि अग तेरे माँहिँ
　　आदर सों लेंगे तोहि गण त्रिपुरारी के।
करें जलकेलि नारि नागरि नवेली तहाँ
　　गंधित हैं नीर गधवती सिंधु प्यारी के।
नीरन तें मोद औ कमोदन तें लै पराग
　　पवन झकोरे नित्त रूख बागवारी के॥

६ साँझ के बिना जो कहुँ पहुँचे तू और काल
　　महाकालजू के पुन्य आश्रम में जाइ के।
ठेर तहाँ लीजो ईठ भानु रहे जोलो दीठ
　　दिवस उजारो रैहे छिति छहराइ के।
सध्यावलि पूजन जब होइ शूलधारी कौ
　　दुदुभि की ठौर दीजो गरज सुनाइ के।
मद मद घोरन को पावैगो फल अखंड
　　ऐसे बरदाई देव-देव कों रिझाइ के॥

---

५ फिर उसी नगरी में तू महादेवजी के पवित्र धाम चडेश्वर जाना, वहाँ मेरे नीले वर्ण को अपने स्वामी के गले की अनुहार देखकर शिवजी के गण तुझे आदर देंगे। उसी धाम में गधवती नदी बहती है जिसमें कस्तूरी इत्यादि का उबटन लगाकर नगर की स्त्रियाँ नहाती हैं। इससे उसका जल सुगंधित है। उसी जल की सुगंध और नदी के कमलों का पराग लिये हुए पवन बगीचो के वृक्षों को झकोरती रहती है॥

६ जो तू संध्याकाल से पहले अथवा पीछे महाकाल के मंदिर पै पहुँचे तो संध्या की आरती के समय तक वहीं ठहरियो। जब आरती होने लगे तू मंद मंद गरजियो। तेरी गरज को दुदुभि का शब्द जान कर शिवजी प्रसन्न होंगे॥

पादन्यासैः क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः ॥
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दून्
आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥ ३७ ॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ॥
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छा
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ३८ ॥

---

३७ आमोक्ष्यन्ते इत्यादि = आमन्द्राणां गर्जितानामिदं फलम् ॥

३८ नागाजिनेच्छा हर = गजचर्मधारणेच्छां निवर्तय । त्वमेव तत्स्थाने भवेति भावः ॥
स्तिमित = निश्चलम् ॥

३७ नाचति नवेली तहाँ वेश्या अलवेली बाल
　　किंकिनी बजति पग धरत सुहावनो ।
रतजड़ी डाँडिन के डोलति है ठाढ़ी चौर
　　थकित भुजान करैं लीला ललचावनो ।
जाइ नखरेखन में उनके परैंगी जब
　　नई बूँद तेरी मेघ सुखसरसावनो ।
बड़े से कटाच्छ तोपे भ्रमरावली समान
　　डारैंगी सनेहभरे येई मनभावनो ॥
३८ बाँधि फेरि मंडल जब लेगो तू छाइ मीत
　　लाँबीसी भुजान रूप ऊँचे रूखनारो बन ।
फूल है जवा को भयो ता समान लाल रंग
　　तेज साँझकाल हू को धारि लेगो कारे तन ।
नृत्य समै ओढ्यो चाहैं आलो गजचर्म नाथ
　　देखि तोहि भूलि जाइ ताको खरो प्यारोपन ।
ग्लानि के मिटे तैं स्वस्थचित्त ह्वै भवानी तोहि
　　प्यार सों लखैंगी आज हरष्यो हमारो मन ॥

---

७ इस मन्दिर में वेश्या नाचती होंगी, जिससे उनके पैरों की किंकणी बजती होगी और रत्नजटित डाँडीवाले चौरों के डुलाने से उनकी भुजाएँ थक गई होंगी । उनके नखच्छदों में तेरी बूँद पड़ने से सुख होगा इसलिए तुझे वे बड़े प्यार से कटाक्ष करके देखेंगी । उनके कटाक्ष ऐसे हैं जैसी भौंरों की पंक्ति (अर्थात् काली और विष भरी) ॥

८ जब तू ऊँचे ऊँचे रूखोंवाले वन पर छा जायगा और नए फूले हुए जवा पुष्पों के समान सन्ध्या की अरुणता का प्रतिबिम्ब तेरे काले शरीर में झलकेगा, तो तू ऐसा दिखाई देगा मानों लोहू टपकता हुआ हाथी का चमड़ा है । तांडव नृत्य के समय शिवजी की इच्छा हाथी का आला चाम ओढ़ने की होती है, तुझे देख कर यह इच्छा पूरी हो जायगी और पार्वतीजी को जो ग्लानि लोहू टपकता गजचर्म देखने से होती है वह न होगी, इसलिए वे तुझे प्यार की दृष्टि से देखेंगी ॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र रात्रौ
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥
सौदामिन्या: कनकनिकषच्छायया दर्शयोर्व्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भूर्विक्लवास्ता: ॥ ३९ ॥

तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्र: ॥
दृष्टे सूर्य्ये पुनरपि भवान् वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या: ॥ ४० ॥

---

३९ विद्युच्छायया मार्गं दर्शय किन्तु तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां वृष्टिगर्जिताभ्यां शब्दायमानो मा स्म भू: ॥

४० भवनवलभि = गृहाच्छादनोपरिभाग ॥
पारावत = कपोत ॥

सवैया

३९ मीत के मन्दिर जाति चलीं
  मिलिहैं तहाँ केतिक राति में नारी ।
मारग सूझ जिन्हैं न परै जब
  सूचिकाभेदि झुकै अँधियारी ।
कंचनरेख कसौटी सो दामिनि
  तू चमकाइ दिखाइ अगारी ।
कीजियो ना कहुँ मेह की घोर
  मरैं अबला अकुलाइ बिचारी ॥

४० थकि जाइगी दामिनि तेरी तिया
  बहु बेर लौं हास बिलास करे ।
टिक रात में लीजियो काहू अटा
  जहाँ सोवत होइँ परेवा परे ।
दिन ऊगत फेर उतै चलियो
  जित में चलिवे को रहे डगरे ।
सहतात कहाँ नर वे जग में
  जिन मीत के कारज सीस धरे ॥

---

३९ अवन्ती में तुझे बहुत सी अभिसारिका नायिका रात में अपने अपने प्रीतमों के पास जाती हुई मिलेंगी । तेरे पहुँचने से अँधेरी ऐसी गाढ़ी छुटेगी मानो सुई से छिद जायगी । जब उस अँधेरी में उनको मार्ग न सूझे तो बिजली ऐसी चमका दीजो जैसे काली कसौटी पै सोने की लकीर होती है परन्तु मेह की घोर मत कीजो नहीं तो वे घबड़ा जायँगी ॥

४० चमकते चमकते तेरी प्यारी बिजली थक जायगी इसलिए किसी एकान्त महल पर जहां खटका इतना भी न हो कि सोते हुए कपोत जाग पड़ें, तू रात में विसराम कर लीजो, फिर प्रात काल अलका का मार्ग लीजो, क्योंकि जिसने मित्र का कारज अपने सिर लिया उसे उस कारज के होने तक सुस्ताना नहीं मिलता ॥

तस्मिन् काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु ॥
प्रालेयास्रं कमलवदनात् सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ४१ ॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ॥
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्य्यात्
मोघीकर्त्तुं चटुलसफरोद्वर्त्तनप्रेक्षितानि ॥ ४२ ॥

---

४१ प्रत्यावृत्त = प्रत्यागत ॥

४२ गम्भीरा = नाम नदी ॥
मोघी = विफली ।
सफर = मीन ॥
उद्वर्तन = उल्लुण्ठनम् ॥

४१ भोर भये बनिता खँडितान के
मीत मिलें अँसवा पुछजात हैं ।
छोड़ियो यातें तुरन्तहिं सो मग
जा मग आवत भानु प्रभात है ।
चाहत वेहु मिटावन को
नलिनी-मुख ओस के आँसू दिखात हैं ।
रोकियो ना उनकी किरनें
अनखाइँ वड़े अनजान की बात हैं ॥

४२ अति उज्जल नीर गँभीरा नदी
निरदोष हिये के समान धरै ।
मनभावन तो प्रतिबिम्ब सुहावन
ता जल जाइ परै ही परै ।
फिर का विधि होइगो जोग जु तू
निठुराई सखा इतनी पकरै ।
सफरी गति चंचल स्वच्छ सरोरुह
वाकी चितोनि निरास करै ॥

---

४१ प्रात का समय ऐसा होता है कि उसमें खंडिता नायिकाओं का क्लेश उनके प्रीतम आकर मिटाते हैं और सूरज देवता भी अपनी प्यारी कमलिनी के मुख से ओस के आँसू पोंछने आते हैं इसलिए तू उस समय सूरज का मार्ग न रोकियो । जो रोकेगा तो सूरज तुझ पै कोप करेंगे और खंडिता नायिका भी क्लेश में रहेंगी ॥

४२ गंभीरा नदी का जल ऐसा उज्ज्वल है मानो स्त्री का निर्दोष हृदय । उसमें सफरी मछलियों की झपट हैं सोई मानो कमल समान स्वच्छ नेत्रों के कटाक्ष हैं । उस जलरूपी हृदय में जब तू प्रतिबिम्ब रूप से प्रवेश कर लेगा फिर क्योंकर ऐसा कठोर हो सकेगा कि उन कटाक्षों को देखा अनदेखा करके चला जाय ॥

तस्याः किञ्चित् करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नील सलिलवसन मुक्तरोधोनितम्बम् ॥
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थः ॥ ४३ ॥

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्य
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभग दन्तिभिः पीयमानः ॥
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायु परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४४ ॥

तत्र स्कन्द नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः ॥

---

४३ वानीर = वेतसम् ॥
विवृतजघनाम् = प्रकटीकृत जघन यया ताम् ॥

४४ देवपूर्वं गिरिम् = देवगिरिम् ॥
काननोदुम्बराणा परिणमयिता = वनजन्तुफलाना परिपाकयिता ॥

४५ स्कन्द = पार्वतीनन्दन स्कन्द सेनानीरग्निभूर्गुहः ।
कार्त्तिकेयो महासेन शरजन्मा षडानन ॥

दोहा

४३ तट सों उठि वाको सलिल लग्यो डार वानीर।
कर पकरत सरक्यो मनो कटि तें नीलो चीर॥
लिये ताहि कैसे बने प्यारे तेरो गौन।
नगन जघन के तजन कों रसिया समरथ कौन॥

४४ तो बरसत छितिगन्ध मिलि होइ पवन रमनीय।
वनगूलर पकवनप्रबल श्रवनसुभग गजपीय॥
शीतल मन्द सुगन्ध बहि करिहै पग पग सेव।
मारग में जब तू चले पहुँचन कों गिरिदेव।

सवैया

४५ नित्त निवास कुमार करें वहाँ
तू उनको अन्हवाइयो जाइ के।
पुष्पमई बदरा बनि के
नभगग मिले फुलवा बरसाइ के।

---

४३ नदी को कवि ने प्रवत्स्यत्पतिका नायिका बनाया है। उसका नीला जल है सोइ नील वस्त्र है, तरङ्ग से उठ कर जो जल बेत की डाल में लगा है मानो चलते समय नायक ने उसकी निशानी ले जाने के लिए वस्त्र पकड़ा है सो तटरूपी कटि से सरक गया है। ऐसी नायिका को छोड़ कर हे मेघ तू क्योंकर आगे जा सकेगा॥

४४ तेरे बरसने से पृथ्वी की सुगंध पवन को सुगंधित करेगी। वही पवन रूखो में मीठी ध्वनि से बहेगी, वनगूलरो को पकावेगी, हाथियो को प्यारी लगेगी, और देवगिरि पर्वत तक मार्ग में तेरी सेवा में रहेगी॥

४५ कहते हैं कि जब तारकासुर को इन्द्र न जीत सका तो देवताओं ने शिवजी से सहायता माँगी। शिवजी ने देवसेना की रक्षा के निमित्त अपना तेज अग्नि को दिया परन्तु अग्नि से सहा न गया, उसने गङ्गाजी में डाला, गङ्गाजी का वही षण्मुख पुत्र हुआ, फिर सरकंडे के वन में कृत्तिकाओं ने पाला इससे नाम उसका शरवनभव और कार्त्तिकेय हुआ। अग्नि से जन्मा इसलिए पावकी कहलाया। कुमार स्वामी और स्कन्द भी उसी बालक के

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूनाम्
अत्यादित्यं हुतवहमुखे सम्भृतं तद्धि तेजः ॥ ४५ ॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ॥
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥ ४६ ॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ॥

---

४६ ज्योतिर्लेखावलयि = तारापङ्क्तिमण्डलं यस्मिन्नस्ति तत् ॥
कुवलयदल = कमलदलम् ॥

जन्म दियो हर पावक में
जिनको सुरराज चमू हित लाइ के।
मन्द करें रवि को परतापहु
आपने मात पिता गुन पाइ के॥

४६ जा उनके वरही की पखा
गिरि तारे जडीसी कहूँ परती है।
गौरि उठाइ के पूत सनेह सों
कानन कञ्ज सो ले धरती है।
जासु कोयन की उज्वलता
शिव के शशि सों समता करती है।
ताहि नचाइयो घोर वडी करि
भाँहि गुफान के जो भरती है॥

४७ चलियो घन पूजि के वा सुर कों
शर को बन जासु की जन्म-मही है।
हर बूँदन के मग तेरो तजें
जिन दम्पति सिद्धन बीन गही है॥

नाम हुए। वाहन उसका मोर है। जब कुमार बड़ा हुआ तारकासुर को मार उसने सदा के लिए देवगिरि पर्वत पर वास लिया। पार्वती शिव उसके मा बाप कहलाते हैं। हे मेघ देवगिरि पर्वत पै पहुँच कर तू कुमार स्वामी को आकाश-गङ्गा के जल में भीगे हुए फूलों की वर्षा करके स्नान कराइयो॥

४६ स्वामिकार्त्तिक का वाहन होने के कारण मोर पर पार्वती जी बहुत प्यार करती है, उसके गिरे हुए पख को जिसमें चन्दोए तारेसे जड़े हैं उठा कर अपने कान पर कमल की ठौर रख लेती है और जिसके कोयो की उज्वलता शिवजी के मस्तकवाले चन्द्रमा की चाँदनी से होड करती है। उसी मोर को तू बड़ी घोर गर्जन कर के देवगिरि पै नचाइयो॥

४७ स्कन्दजी को जिनकी जन्मभूमि सरकंडे का बन है, तू पूज कर आगे चलियो।

व्यालम्बेथा· सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम् ॥ ४७ ।

त्वय्यादातु जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचोरे
तस्या सिन्धोः पृथुमपि तनु दूरभावात् प्रवाहम् ॥
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टीः
एकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४८ ॥

तामुत्तीर्य्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरि विलसत्कृष्णशारप्रभाणाम् ॥
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्व्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ४९ ॥

---

४७ सुरभितनयालम्भजा = गोहननाज्जाताम् ॥
रन्तिदेव = नाम राजा ॥

४८ शार्ङ्गिण = विष्णोः ॥
सिन्धु = नदी ॥

४९ दशपुर = रन्तिदेवस्य नगरम् ॥

करि आदर ढीले उलाँघियो तू
गउमेधन तें सरिता जो बही है।
मनु कीरति श्रीरतिदेवजू की
जलरूप में भूतल फैलि रही है ॥

४८ बिसतार के माहिं बडी सरिता
वह दूर तें दीखति है पतरी।
हरि रंग के चोर पिये जब तू
जल वामें झुकाइ के देह खरी।
लखि लेहिंगे खेचर तोहि घने
करि दीठि तुरन्तहि चाव भरी
मनु भूमि की मोतिन माल में एक
बडी मणि नीलम आनि धरी ॥

चौपाई

४९ उतरि ताहि आगे मग लीजो। दशपुर तियन दरश चलि दीजो ॥
भरे कुतूहल उनके नैना। जानत भ्रूविलास अरु सेना ॥

उन्हें वीणा सुनाने को सिद्ध लोग अपनी स्त्रियों सहित आते होंगे, सो वीणा भीगने के डर से तेरा मार्ग छोड़ देंगे। फिर तुझे चर्मण्वती अर्थात् चम्बल नदी मिलेगी जिसकी उत्पत्ति महाराज रन्तिदेव के अनेक गोमेधों के रुधिर से कहते हैं। तू इस नदी का आदर करता हुआ धीरे धीरे उलाँघियो क्योंकि यह मानो जलरूप में रन्तिदेव की कीर्ति है ॥

४८ चम्बल का विस्तार तो बहुत है परन्तु दूर से आकाश में फिरनेवालों को ऐसी पतली दीखती है मानो पृथ्वी के गले में मोतियों की माला पड़ी है, सो जब तू काले वर्ण का (कृष्ण के रंग का चोर) उसमें से पानी लेने झुकेगा तो उनको यह ऐसी शोभायमान दीखेगी माना उसी माला में एक बड़ा नीलम रक्खा है ॥

४९ इस नदी को उतर कर तू दशपुर जाना (जो रन्तिदेव की राजधानी है)। वहाँ की स्त्रियाँ बहुत चतुर हैं। उनको तू अपना दर्शन दीजो। तुझे देखने

ब्रह्मावर्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथाः ॥
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यषिञ्चन्मुखानि ॥ ५० ॥

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे ॥
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीनाम्
अन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ५१ ॥

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ॥
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५२ ॥

---

५० सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ मनु २ ॥ १७ ॥

५१ लाङ्गली = हलधर, बलदेव ॥

५२ अनुकनखलं = हरिद्वारम् ॥
खलः को नात्र मुक्तिं वा भजते तत्र मज्जनात् ।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना [illegible] ॥

लखन तोहि जब पलक उठैहैं। अद्भुत मृगलोचन दुति पैहैं॥
जिमि अलिपाँति कुन्द सँग भाजति। सो छवि उन नैनन बिच राजति॥
५० चलियो ब्रह्मावर्तहि छाई। अरु कुरुक्षेत्र पहुँचियो जाई॥
विकट जुद्ध छत्रिन जहँ कीन्हे। अजहुँ प्रगट तिनके हैं चीन्हे॥
बरसे जहँ अरजुन शितबाना। राजन के सिर बेपरमाना॥
जिमि बरसति तेरी जलधारा। कमलमुखन अनगिनत अपारा॥

शिखरिणी

५१ तजी प्यारी हाला विमल निज बाला दृगन सी
हली बन्धूस्नेही समर तजि सेई सरसुती।
मिले जो तू याही सुभग सरिता के जलन तें
करें अन्तरशुद्धी तुव बरण ही सों कृष्ण की॥
५२ चल्यो आगे जय्यो कनखल जहाँ जाह्नलली
हिमालय तें आई सगर-कुल श्रेनी सुरग की।
करी जाने गौरी भ्रुव कुटिल की फेनन हँसी।
जटा शम्भूजी की शशिसहित खींची कर धरी॥

को जब वे आँख उठावेंगी तो काली पुतली और श्वेत कोयों की शोभा ऐसी दरसेगी मानो चलते हुए कुन्द पुष्प के पीछे भौंरों की पंक्ति जाती है।
५० ब्रह्मावर्त देश पर छाया डालता हुआ तू कुरुक्षेत्र पहुँचियो जहाँ महाभारत की लड़ाई के चिह्न अब तक दीखते हैं। उस लड़ाई में अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष से राजाओं के सिर पर बेप्रमाण पैने बाण ऐसे बरसाए थे जैसे तू कमलों पर मेह की धारा बरसाता है।
५१ कौरव पाण्डवों को समान बन्धु मान बलदेवजी उनके संग्राम में न गए। प्यारी मदिरा को जिसे सौतभाव से रेवतीजी निरखा करती थीं अथवा जो उनके नेत्र समान निर्मल थी, त्याग कर सरस्वती नदी का सेवन करते रहे। उसी नदी के जल से मिलकर तुझ वर्णमात्र कृष्ण का भी अन्तस शुद्ध हो जायगा॥
५२ आगे तू कनखल जाना जहाँ जह्नुसुता (श्रीगङ्गाजी) सगर सन्तान को स्वर्ग की नसेनी हिमालय से उतरी हैं। जब सौतभाव करके पार्वतीजी ने भौंह टेढ़ी की थी सो उसी गङ्गाजी ने अपने श्वेत फेनों से मानों उसकी हँसी करके अपने तरङ्गरूपी हाथों से शिवजी की जटा चन्द्रमा सहित पकड़ ली थी॥

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पूर्वार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्य्यगम्भः ॥
संसर्पन्त्यास्सपदि भवतः स्रोतसिच्छाययाऽसौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेनाभिरामा ॥ ५३ ॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ॥
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५४ ॥

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीवालभारो दवाग्निः ॥
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्त्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५५ ॥

---

५३ तर्कये = विचारये ॥
तिर्य्यक् = तिरश्चीन यथा स्यात्तथा ॥
स्थानोपगत = प्रयागादन्यत्र प्राप्त ॥

५४ प्रभव = कारण अथवा पितरम् ॥

५५ सरल = देवदारु ॥

५३ जु तू इच्छा चाके करि विमल पानी पियन की।
झुके आधो लम्बे तन गगन में ज्यों सुरकरी।
बनै तो छाया तें तुरत वह धारा ललित सी।
मनो है कालिन्दी अनतहि बिना संगम मिली॥

५४ पिताजी पै वाके नितहि कसतूरी-मृग वसैं।
शिला सोंधी यातें अरु धवल पालो परि लसे।
विराजेगो जो तू श्रमहरन ताकी शिखर पे।
दिपेगो ज्यों गोरे शिववृषभ पोदी कलिल है॥

छप्पै

५५ चलत पवन बन प्रबल घिसत तरु सरल परस्पर।
प्रगटत अनल प्रचंड हरत चमरीमृग कचभर।
सो दवागि यदि दहकि देइ तिहि अचल सतावे।
उचित होइ तब तोहि तुरत ही जल बरसावे।
करि करि सहस्रधारा जलद दूर तासु बाधा करे।
फल मुख्य सजन सम्पति यही पीर पराई नित हरे॥

---

३ जो तू गंगाजी का जल पीने को दिग्गज की भांति आकाश में लम्बा हो कर झुकेगा तो तेरे काले रंग की छाया श्वेत जल में पड़कर ऐसी शोभा होगी मानो प्रयाग के बिनाही गंगा जमुना का संगम हुआ है॥

४ हिमालय पर्वत पर (जो गंगाजी का पिता कहलाता है) नित्त कस्तूरी मृग बैठते हैं। उनकी नाभि लगने से उसकी शिला सुगन्धित हैं और पाला पड़ने से वह सुपेद दीखता है। मार्ग की थकावट मिटानेवाली उसकी शिखर पर जब तू बैठेगा तो ऐसी शोभा होगी मानो शिवजी के धौले नांदिये के सींग पर कीचड़ लग रही है॥

५ पवन चलने से सरल (देवदार) के वृक्ष आपस में रगड़ते हैं। उनसे आग निकल कर बन में लगती है। चिनगारियों से चमरीमृगों की पूँछ के बाल जलते हैं। कदाचित् तेरे सामने वही दावानल आग पहाड़ में लगे तो तू तुरन्त जल बरसा कर पहाड़ की बाधा मिटा दीजो क्योंकि सत्पुरुषों की सम्पत्ति का मुख्य फल यही है कि पराई पीर हरें॥

निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ ५८ ॥

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ॥
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः ॥ ५९ ॥

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ॥
तुङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिशमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ ६० ॥

---

५९ भृगुपतियशोवर्त्म = परशुरामस्य यशः प्रवृत्तिकारणम् ॥

६० अट्टहास = हासादीना धावल्यं कविसमयसिद्धम् ॥

विह्वल किन्नरनारि आपनी तान सुनावति।
हरषि हरषि जिय माहि त्रिपुरविजई गुन गावति।
घनघोर जाइ यदि तू करे ज्यों मृदंग गुमकत गुफन।
पूरन समाज संगीत तहँ पशुपति को बन जाइ घन॥

चौपाई

५९ आगे हिमपरवत तट पाटी। क्रौञ्चरन्ध्र नामक इक घाटी॥
है सोई हंसन को द्वारा। भृगुपति यश प्रगटावनहारा॥
ता विच काढि उत्तर चलि दीजो। तिरछो गति लम्बो तन कीजो॥
जिमि हरि श्याम पाँव विस्तारयो। बलि छलिवे को व्रत जब धारयो॥
६० उठि ऊँचो कैलासहि जइयो। अतिथी वा गिरि कौ बनि रहियो॥
है दर्पण वह सुर-वनितन को। उकसायो लंकेश भुजन कौ॥
तुङ्ग शिखर सो नभ में राजत। सितता तासु कुमुद लखि लाजत॥
मनु शिव अट्टहास इक ठौरो। करत प्रकाश दिशन निच धौरो॥

गरजकर गुफाओ में मृदंग सा बजादेगा तो महादेवजी के संगीत का पूरा समाज वहाँ बन जायगा॥

५९ आगे हिमालय के तट में क्रौञ्चरन्ध्र नाम घाटी है उसी मे हो कर हंस आते-जाते हैं और यही परशुराम के यश का मार्ग है अर्थात् परशुराम का यश पहले उसी में प्रगट हुआ था (क्योंकि महादेव से बाणविद्या सीखकर जब परशुराम क्षत्रियों को जीतने कैलास से उतरे तो अपने बाणों से पहाड़ काट कर यह नया मार्ग उन्होंने बनाया था)। तू लम्बा और तिरछा होकर उससे निकल जाना। तेरा लम्बा शरीर ऐसा शोभायमान होगा जैसा बलि छलने के समय वामनजी का बढ़ाया हुआ पाँव था॥

६० क्रौञ्चरन्ध्र से निकल कर तू ऊपर को चलियो। आगे कैलास मिलेगा। उसका पाहुना बनियो। वह पर्वत स्फटिकमणि का है, इसलिए देवताओं की स्त्रियों का दर्पण है। उसी को रावण ने जड़ से हिला दिया था। उसका श्वेत शिखर आकाश से लग रहा है। वह सुपेदी में कमल को भी लजाता है, मानो शिवजी का अट्टहास इकट्ठा हो कर दिशाओं में चमकता है॥

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ॥
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्रीम्
अंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ६१ ॥

हित्वा तस्मिन् भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विहरेत् पादचारेण गौरी ॥
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु ॥ ६२ ॥

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ॥
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे धर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भाययेस्ताः ॥ ६३ ॥

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन् कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ॥

---

६१ स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे = सचिक्कणमर्दितं यदञ्जनं तस्यामेवाभा यस्मिन् ॥
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेद = तत्कालच्छिन्नस्य गजदन्तस्य खण्ड ॥

६२ भङ्गीभक्त्या = पर्व्वणा रचनया ॥

स्तम्भितान्तरजलौघ = घनीभाव प्रापितोऽन्तरजलस्य प्रवाहो येन स ॥
४ यन्त्रधारागृहत्वम् = जलशोचनयन्त्रम् ॥

१ धाके निकट जबहि तू जाई। रहे रुचिर अञ्जनरँग छाई॥
स्वेतवरण वह शैल निदाना। द्विरददंत सदखंड समाना॥
शोभा तुरत मनोहर पावे। निरखत इकटक नैनन भावे॥
जिमि हलधरतन लसत सुहायो। नीलवसन काँधे लटकायो॥
२ लिए शम्भु कर निज कर माहीं। भुजगवलय जा कर विच नाहीं॥
गवरि होइँ पायन यदि फिरती। वा क्रीडागिरि माँहि विचरती॥
पैरीरूप सुभग बनि लीजो। पुए नीर अन्तर को कीजो॥
धरि धरि पग तो पे जब धावें। चढ़त चरन कछु खेद न पावें॥
३ सुरयुवती जुरि मिलि तहँ आवें। पकरि तोहि जलजन्त्र बनावें॥
रघसि रघसि हीरा कंगन सो। नीर झरावें तो अगन सों॥
इन खिलवारन तें यदि तेरो। छुटकारो नहि होइ सवेरो॥
श्रवन कठोर घोर तव कीजो। यो डरपाय उन्हें भग लीजो॥

घनाक्षरी

६४ उपजत वृन्द वृन्द वारिज सुन्हेरी जामें।
पेसो मानसर को ले नीर मेघ पीजो तू।

---

१ यह पहाड़ तुरन्त के कटे हाथी-दाँत के समान उज्ज्वल है और तू काजल समान काला है। जब उसके शिखर पर जा कर तू बैठेगा तो ऐसी शोभा पावेगा मानो गोरे बलदेवजी के कंधे पर नीलाम्बर रक्खा है॥

२ शिवजी के जिस हाथ में सर्प का कंगन नहीं है उसे अपने हाथ में लिए हुए कदाचित् पार्वतीजी उस पहाड़ में पैरों फिरती हुई तुझे मिल जायँ तो तू अपने भीतर का जल कड़ा करके सीढ़ी का रूप धर लीजो, इसलिये कि तेरे शरीर पै पाँव रख कर चढ़ने में उन्हें खेद न हो॥

३ वहाँ देवताओं की स्त्रियाँ तुझे पकड़ कर जल छिड़कने की कल अर्थात् पिचकारी बनावेंगी और अपने हीराजड़े कंगनों से तेरे शरीर को रगड़ कर जल बरसावेंगी। उनके इस खेल से जो तेरा छुटकारा न हो सके तो तू कठोर घोर करके उन्हें डरा दीजो॥

४ मानसरोवर का जो नीर सुनहरा कमल उपजाता है उसे तू पीजो। ऐरावत

धुन्वन् वातैः सजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि-
च्छायाभिन्नस्फटिकविशद निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६४ ॥

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ॥
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमानै-
र्मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६५ ॥

इति पूर्वमेघः ॥

---

६४ कल्पवृक्ष = पञ्चैते देवतरवो मन्दार पारिजातक ।
सन्तान कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥
निर्विशे = समुपभुङ्क्ष्व ॥
नगेन्द्रम् = कैलासम् ॥

६५ दुकूलं = सूक्ष्मवस्त्रम् ॥
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे = पुनरलकां तु न ज्ञास्यसे इति न
ज्ञास्यस एव ॥

बूँदन बुन्यो सो मुखवस्त्र वाहि देके नेक
दिग्गज ऐरावत सों प्रीति मानि लीजो तू।
धारि भरी बातन तें कलपवृक्षपातन में
कान कों सुहाती सी धुनि सुनाई दीजो तू।
फटिक समान गोरे विम्बित वा शैल माहि
जोई तोहि भावें सो विहार फेर कीजो तू॥
६५ देखि जानि लीजो या नगेन्द्र के बसी है लङ्क
अलका हमारी तीर जह्नु की दुलारी के।
पीतम के अङ्क माहि यहो कामचारी मेघ
बैठी जिमि नारी छोरें छोर स्वेत सारी के।
पावस में सोई नीर चूवत धरेगी तोहि
ऊँचे से निकेत सातखन की अटारी के।
अबला सँवारे मानो मोतिन सो गूँथे जाल
सीस पै सलोने चारु बेनी बार कारी के॥

इति पूर्वमेघ॥

हाथी को अपनी बूँदों का सिरोपाव देकर उससे प्रीति कीजो। अपने जल से भीगी हुई पवन चला कर कल्पवृक्षों के पत्तों में मीठी धुनि कराइयो। इस भाँति उस चित्र विचित्र स्फटिक समान निर्मल पहाड़ में जहाँ चाहे तहाँ फिरियो (क्योंकि वह तेरा मित्र है)॥

कैलास के कटक में आ कर देख लीजो गंगाजी के तीर पर हमारी अलकापुरी ऐसे बस रही है मानो सुपेद साड़ी के छोर खोले हुए कोई नायिका अपने प्यारे की गोद में बैठी है। वही अलका बरसात में तुम्हें जल टपकाते हुए को अपने ऊँचे महलों पर ऐसे रक्खेगी जैसे मोतियों से गूँथे हुए काले अलक जाल को कामिनी अपने मस्तक पर रखती है॥

मेघदूतउत्तरार्द्धम्



विद्युत्वन्त ललितवनिताः सेन्द्रचाप सचित्राः
सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ॥
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रलिहाग्राः
प्रासादास्त्वा तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषै. ॥ ६६ ॥
हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्ध
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री. ॥
चूडापाशे नवकुरुबक चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्तेऽपि त्वदुपगमजं यत्र नीप वधूनाम् ॥ ६७ ॥
यस्यां यक्षा. सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहाया ॥
आसेवन्ते मधु रतिरस कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकै पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ६८ ॥

---

६६ तुलयितु अलं = समीकर्तुम् पर्याप्ता ॥

६७ कमलकुन्दादितत्तत्कार्य्यसमाहाराभिधानादर्थात् सर्व्वर्तुसमाहारसिद्धि ॥

६८ सितमणिमयानि = स्फटिकमणिमयानि ॥

मेघदूत उत्तरार्ध

—*○*○*—

सवैया

होड वहाँ करिहैं बहु भाँतिन तो सँग मन्दिर नीकी छटा के
तू चपला सुरचाप लिये उनमें अबला अरु चित्र अटा के।
तो उर नीर वहाँ भुमि हीर मृदङ्ग बजे इत शोर घटा के
तुङ्ग है तू तो शिखा बनकी परसिद्ध हैं नाम सो अभ्रचटा के॥
७ तिय हाथन केलिकमोद वहाँ अलकावलि सोहति कुन्दकली
रजलोध्रप्रसून परे मुख पै दुति दीखति ज्यों पियराई भली।
कुरवा नव चोटिन माँहि लसें अरु कान शरीषन की अवली
तुहि देखत फूल कदम्ब खिलें सोई माँग धरे सुखमा है भली॥
८ स्वेत बिलौर के भौनन में वहाँ फूल से तारकबिम्ब परें नित
तो मधुरी धुनि के अनुमान मृदंग बजें सुर मन्द भरें नित।

---

६ हे मेघ अलका के महल अनेक भाँति तेरी बराबरी करेंगे। तेरे साथ बिजली और इन्द्र धनुष है उनमें चपल स्त्री और चित्रकारी हैं। तेरे अन्तर में उज्ज्वल नीर है उनके आँगनो मे स्फटिकमणि जडी है। तुझमें घोर है उनमें संगीत के मृदङ्ग बजते हैं तू ऊँचा बहुत है उनकी मुँडेली भी अभ्रचट (अर्थात् बादल चाटनेवाली) कहलाती हैं (महलों के नाम बहुधा अभ्रकरा, अभ्रलिहाम, मेघपृष्ट इत्यादि होते हैं)॥

७ वहाँ स्त्रियों के हाथों में खेलने के कमल हैं, अलकों में कुन्द की कली हैं, लोध की रज से मुख की कान्ति पीली दीखती है, कानों पर सिरस के फूल रक्खे हैं, चोटियों में कुरबक गूँथे हैं और बरसा ऋतु में फूलनेवाले कदम्ब के फूल माँगों में लगे हैं (तात्पर्य यह कि अलका में छ ओं ऋतु के फूल सदा फूलते हैं)॥

८ वहाँ स्फटिकमणि के महलों में तारों की छाया ऐसी पड़ती है मानो फूल जड़े हैं, मन्दी ध्वनि से मृदङ्ग ऐसे बजते हैं मानो धीरे धीरे बादल गरजता है

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
कृतच्छेदैः कनककमलिनेकर्णविभ्रंशिभिश्च ॥
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः
नैशो मार्गस्सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥ ६९ ॥

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र यक्षाङ्गनानां
वासः कामादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ॥
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखगतान् प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ७० ॥

नेत्रा नीताः सततगतिना ये विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां सजलकणिकादोषमुत्पाद्य सद्य ॥
शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा यत्र जालै-
र्धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ७१ ॥

---

६९ कृतच्छेदैः = रचितखण्डैः ॥
स्तनपरिसर = उरोजोन्नति ॥
नैशो मार्गः = निशाभिसारिकाणां पन्था ॥

७१ नेत्रा = नायकेन ॥
सततगतिना = वायुना ।

कामिनि भामिनि सङ्ग लिये बहु भाँतिन यक्ष विहार करें नित
पीवत कल्पप्रसूतमधू सिगरे रतिरंग प्रसंग सरें नित ॥
अलकावलि तें गिरि फूल परे गति आतुर माँहि मँदारन के
अरु कानन तें खिसले अवतंस बने कलधौतकल्हारन के ।
कुच उन्नति के गुन तें मुकता बिथरे गुन टूटत हारन के
इन तें वहाँ भोरहि जानि परे मग राति भए अभिसारन के ॥
वहँ प्रीतम ढीठ भए रस के बस हाथ चलावत जोरी करें
गिर जच्छवधून के वस्त्र कछू जिन छोर छुरान की डोरी परें ।
दुति निर्मल रत्नप्रदीप धरे सोइ लोइसी आगिन ओरी जरें
तिन ऊपर कुंकुम फेंकि वृथा गड़ि लाजन भोरी सी गोरी मरें ॥
वहँ पौन के पेरे कितेकहु बादर लो वनहार के आवत हैं
जलबूँदन की बरषा करिकै अँगनान के चित्र मिटावत हैं ।
भयभीत से फेरि झरोखन ह्वै सिमिटे तन बाहर धावत हैं
कढ़िजान को वेगि धुआँ बनिके बड़े चातुर वेहू कहावत हैं ॥

वहाँ महलो में यक्ष लोग सुन्दर स्त्रियो के साथ रतिरस का फल देनेवाली कल्पवृक्ष की मदिरा पीकर विहार करते है ॥

जिन मार्गो होकर वहाँ रात में अभिसारिका नायिका गई होगी वे दिन निकलते ही इन चिह्नों से पहचाने जायँगे कि वेग चलने में कहीं उनकी अलकों से छूटकर मन्दार के पुष्प गिरे हैं, कहीं कानो से कनककमल (कलधौतकल्हार) के करनफूल खिसले है, कहीं उरोजो की ऊँचाई से हार का डोरा टूट मोती बिथरे है ॥

२ वहाँ कामकेलि में जच्छ लोग अपनी स्त्रियों के वस्त्रों पर हाथ डालते हैं जिससे नीवी बन्ध (छुरा अथवा नाड़ा) खुलकर कपड़े ढीले होजाते हैं फिर मुग्धा स्त्रियाँ लाज की मारी सामने रक्खे हुए रत्नदीपकों पर चूर्ण की मुट्ठी फेंकती है परन्तु मणि के दीपक चूर्ण की मुट्ठी से कब बुझते हैं ॥

१ पवन के साथ अलका के महलों में बहुतेरे बादल आकर भीतो के चित्र अपनी बूँदों से बिगाड़ते हैं फिर डर के से मारे तुरन्त छोटा शरीर बनाकर झरोखों के मार्ग भाग जाते हैं (जैसे धुँएँ की राह कोई व्यभिचारी भागता है) ॥

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानाम्
अङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ॥
त्वत्संरोधापगमविशदैः प्रेरिताश्चन्द्रपादै-
र्व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥ ७

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ॥
सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ ७३ ॥

---

७२ व्यालुम्पन्ति = दूरीकुर्वन्ति ॥
चन्द्रकान्त = मणिविशेष ॥

७३ देवं = शिवम् ।
मन्मथचापोऽपि यत्रचिदपि चिवर्यीस्यात् न तु अलकाङ्गनानां विभ्रमा

७२ लटकें यहाँ सूत के जाल धरीं मणि इन्दुप्रिया छवि पावती हैं।
सित निर्धन चन्द्रमरीचिन कों अपने तन खींचि मिलावती हैं।
फिर उज्ज्वल नीरन की बुँदियाँ हरवें हरवें बरसावती हैं।
गलबाहीं पिया तें छुटी ललना तिनकी रतिग्लानि मिटावती हैं॥

घनाक्षरी

७३ मीत धिपरेश रहैं नित्त ही महेश यहाँ
जानि यों रलेश चित्त शंका विसरावै ना।
ताही हर बार बार अलकापुरी के माहिं
भृकुटी की प्रतिञ्चा खींचि चाप पे चढ़ावे ना।
नागरि तियान नैन विभ्रम प्रताप पाय
कारज मैं वाके तऊ हानि होन पावे ना।
छूटत कटाक्ष बाकी भौंह की कमानन तें
कामीरूप बेझो बिना-बेध्यो रहि जावे ना॥

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ॥
यस्योद्याने कृतकतनयः कान्तया वर्द्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ ७४ ॥

वापी चास्मिन् मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना कमलमुकुलैः स्निग्धवैदूर्य्यनालैः ॥
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टम्
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ ७५ ॥

---

७४ स्तवक = गुच्छ ॥

७५ व्यपगतशुच = अकलुषजलत्वाद् वीतदुःखा ॥

७४ यक्षराज भौनन तें उत्तर की ओर नेक
ताही अलका में मीत मन्दिर हमारो है ।
दूर ते पिछान्यो जात चित्र चारु तोरन तें
द्वार पै सजे जो मानो चाप इन्द्रचारो है ।
ताके बाग बीच एक नूतन मन्दार-वृक्ष
मेरी तीय पाल्यो मानि पुत्र सो दुलारो है ।
गुच्छन के भार तें झुकी हैं डार डार आछी
आय जात हाथ फूल बीनत सुखारो है ॥

७५ ताही भौन माहिं ताल सुन्दर बन्यो है एक
सीढ़ी लगी हैं जामें मरकत शिलान की ।
जातरुप कंज की कलीन ते रह्यो है छाय
अद्भुत सजी हैं नाल नीले उपलान की ।
आय के बसे हैं जेते राजहंस वाके नीर
नेक ना रही है चित्त चिन्ता आपदान की ।
तोहू को विलोकि वे न यातें सुधि लावें नेक
निकट रहे हू मानसर के पयान की ॥

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ॥
यस्योद्याने कृतकतनयः कान्तया वर्द्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ ७४

वापी चास्मिन् म...
हैमैश्छन्ना कमलमुकुलैः ...
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानस...
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि...

७४ यक्षराज भौनन तें उत्तर की ओर नेक
ताही अलका में मीत मन्दिर हमारो है ।
दूर से पिछान्यो जात चित्र चारु तोरन तें
द्वार पे सजे जो मानो चाप इन्द्रवारो है ।
ताके बाग बीच एक नूतन मन्दार-वृक्ष
मेरी तीय पाल्यो मानि पुत्र सो दुलारो है ।
गुच्छन के भार तें झुकी हैं डार डार आछी
आय जात हाथ फूल बीनत सुखारो है ॥

७५ ताही भौन माहिं ताल सुन्दर बन्यो है एक
सीढ़ी लगी हैं जामें मरकत शिलान की ।
जातरूप कंज की कलीन तें रह्यो है छाय
अद्भुत सजी हैं नाल नीले उपलान की ।
आय के बसे हु जेते राजहंस याके नीर
नेक ना रही है चित्त चिन्ता आपदान की ।
तोहू को बिलोकि वे न यातें सुधि लावें नेक
निकट रहे हु मानसर के पयान की ॥

---

७४ हे मेघ उसी नगरी में कुबेर के महलों से उत्तर ओर थोड़ी दूर मेरा घर है उसके द्वार पर रङ्ग बिरङ्गे तोरन (चित्र) ऐसे खिंचे हैं मानो इन्द्रधनुष रक्खा है, आँगन के बगीचे में एक मन्दार का वृक्ष है जिसको मेरी स्त्री ने पुत्र के समान पाला है । वह कलियों से लदलदाकर ऐसा झुकता है कि उसके फूलों पर सहज ही हाथ पहुँचता है ॥

७५ इसी बगीचे में पन्नों की सीढ़ियों का एक सुन्दर ताल है जो नीलम (नील-उपल) की डंडी के सुनहरे कमलों से छा रहा है । उसमें जिन हंसों ने आकर वास लिया है वे ऐसे सुखी हैं कि बरसात में भी मानसरोवर जाने की सुधि नहीं करते, यद्यपि मानसरोवर वहाँ से निकट भी है (बरसात में देस के नदी-नालों का पानी गँदला होजाता है इसलिये राजहंस दुःख पाकर देस से मानसरोवर को चले जाते हैं) ॥

यस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ ७६ ॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केशरस्तत्र कान्तः
प्रत्यासन्नः कुरवकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ॥
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ॥ ७७ ॥

---

७७ अशोकबकुलयोः स्त्रीपादताडनगण्डूषमदिरे दोहदमिति प्रसिद्धिः ॥

श्लोक । स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः सीधुगण्डूषसेकात्
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ॥
मन्दारो नर्म्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवातात्
चूतो गीतान्नमेरुर्विकसति च पुरो नर्त्तनात् कर्णिकारः ॥

७६ वाही ताल तीर पै हमारो बन्यो क्रीडाशैल
चोटी चारु जापै इन्द्रनील की सजाई है।
जातरूप केलन की बारि चहुँ ओर लगी
नैनन सुहाती भाती शोभा सरसाई है।
देखि देखि तोहि मीत संग चंचला के आज
तेरी उनहारि मोहि वाकी सुधि आई है।
जानत हूँ प्यारो खरो मेरी बनिता को यह
आए सुधि होति चित्त यातें भीरुताई है॥

७७ मंडप है माधवीलता को रमनीक तहाँ
सुन्दर कुरे की बारि ओर पास छाई है।
नेरेही अशोक लाल सोहे लोल पल्लव लै
दूजी ओर केशर हु ठाढो सुखदाई है।
दोहद बहाने एक तेरी वा सखी को पाँव
बायों छूयवे को आस मेरी सी लगाई है।
प्यारी मुख आसव के लेन काज दूसरे में
ताही मिस मेरी भांति लालसा समाई है॥

---

६ उसी ताल के तट पर हमारा क्रीडाशैल (मन बहलाने का पहाड़) है जिसके शिखर में बड़े बड़े नीलम लगे हैं और ओर पास सुनहरी केलों की सुन्दर बाढ़ है। जब मैं तुझे बिजली चमकाता देखता हूँ तो ध्यान ऐसा बँधता है मानो वही पहाड़ सामने खड़ा है। वह मेरी प्यारी का प्यारा है इसलिये सुधि आने पर मेरा हृदय कँप जाता है॥

७ इस पहाड़ पर चमेली का एक झाड़ है जिसके चारों ओर कुरे की बाढ़ लगी है और पास ही एक वृक्ष रक्त अशोक का है जिसके हिलते हुए पत्ते शोभायमान दीखते हैं और दूसरा वृक्ष बकुल का है। दोहद (फूलने की चाह) का मिस करके इनमें से पहला तो मेरी भांति मेरी प्यारी का बायाँ पाँव छूना चाहता है और दूसरा उसके मुख का रस लेने की मेरी ही सी आकांक्षा रखता है (लोक-प्रसिद्ध बात है कि जब तक सौभाग्यवती स्त्री का बायाँ पैर न लगे अशोक नहीं खिलता और जब तक ऐसी ही स्त्री अपने मुख का कुल्ला न डाले अथवा मुख से न छूए बकुल नहीं फूलता)॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि·
मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रोढवंशप्रकाशै· ॥
तालै· सिञ्चद्वलयसुभगै कान्तया नर्त्तितो मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठ· सुहृद् व· ॥ ७८ ॥

एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथाः
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा ॥
मन्दच्छाय भवनमधुना मद्वियोगेन नून
सूर्य्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम् ॥ ७९ ॥

गत्वा सद्यः कलभतनुता तत्परित्राणहेतो·
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्ण· ॥
अर्हस्यन्तर्भवनपतिता कर्त्तुमल्पाल्पभास
खद्योतालीविलसितनिभा विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ ८० ॥

---

७९ शङ्खपद्मौ = पद्मोऽस्त्रियां महापद्म शङ्खो मकरकच्छपौ ।
मुकुन्दनन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥
अभिख्या = शोभा ॥

८० कलभ = करिशावक ॥
निभा = समानाम् ॥

७८ उनही के बीच में बन्यो है खम्भ कञ्चन को
पटुली सु जापे धरी फटिकशिला की है ।
मूल में जडी हैं कनी चोखी चारु पन्नन की
सोहे छवि आछो नए बाँस मञ्जुला की है ।
आयके विराजे तापे नीलकण्ठ तेरो मीत
बेला जब होति भानु खण्डितकला की है ।
प्यार सों नचावे ताहि मेरी प्रानप्यारी नित्त
दै दै झनकीली ताल ककन छला की है ॥

दोहा

७९ इन चिह्नन पहचानियो मेरो बगर सुजान
शङ्ख पद्म द्वारें लिखे करि तिनहू पे ध्यान ॥
अब तो मो बिन होयगो वह घर शोभाहीन
अस्त भयें जिमि भानु के वारिजबन छबिछीन ॥
८० गज शिशु सम लघु बनि तुरत ममप्यारी हित जाय
क्रीडागिरि पै बैठियो जो मैं दियो बताय ॥
भवन बीच चपला चमक मन्दी कीजो मीत
लसति पाँति जुगनू मनो अबला होइ न भीत ॥

---

७८ उन वृक्षों के मध्य में एक सोने का खम्भ है जिस पर [illegible]
है और जड़ में पन्ने जड़े हैं मानो नये हरे बांस लगे हैं । [illegible]
साँझ के समय तेरा सखा मोर आकर बैठता है और [illegible]
बजती हुई ताल देकर नचाती है ॥

७९ इन चिह्नों से तू मेरा घर जान लीजो और दूसरा चिह्न यह है कि द्वार पर
शङ्ख और पद्मनिधियों के रूप लिखे हैं । मेरे बिना वह [illegible]
जैसे सूरज के बिना कमल का ठाट ॥

८० जो तू बड़ा रूप धर के आयगा तो मेरी प्यारी डरेगी । [illegible] हाथी के बच्चे
के समान छोटा बन कर उस क्रीड़ाशैल पर जिसका [illegible] कर चुका हूँ

तन्वी श्यामा शिखरदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ॥
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ ८१ ॥

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ॥
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम् ॥ ८२ ॥

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियायाः
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ॥
हस्ते न्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वात्
इन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥ ८३ ॥

---

८१ शिखर = दाडिमबीजसदृशरक्तमणिविशेषः ॥

८२ परिमितकथां = मितभाषिणीम् ॥

८३ उच्छूननेत्र = सशोथनयनम् ॥

८१ बिम्बाधर दाड़िमदशन निम्ननाभि कृशगात
बसति तहाँ मृगलोचनी युवति छीनकटि तात ॥
श्रोणिभार अलसानगति झुकति कछुक कुचभार
मानहु ललना-सृष्टि में मुख्य रची करतार ॥

८२ ताहि सजन घन जानियो मेरो आधो जीउ
रहति अकेली मो बिना चकई ज्यों बिन पीउ ॥
मितभाषिनि उत्कण्ठिता विरह कठिन दिन जात
शीत हनी जिमि कमलिनी योरहि रूप दिखात ॥

८३ रोइ रोइ सूजे सदा वा प्यारी के नैन
ताती स्वासन तें रह्यो वह रँग होठन पै न ॥
खुले बार कर पै धस्यो आनन कछुक लखात
ज्यों घनघेरो चद्रमा छवि मलीन दिखरात ॥

चँदियो और बिजली भी ऐसी थोड़ी चमकाइयो जैसी जुगनुओं की पाँति होती है ॥

८१ वही घर में मेरी स्त्री मिलेगी जिसके ओठ बिम्बाफल से, दाँत अनार के दाने से, नाभि गहरी, शरीर दुबला, आँख चकित हरिनी की सी और कमर पतली है। वह नितम्बों के बोझ से चलने में कुछ अलसाती है और कुचों के बोझ से कुछ झुकी सी रहती है। निदान ऐसी है मानो स्त्रियों की सृष्टि में विधाता ने सबसे उत्तम वही को बनाया है ॥

८२ वही को तू मेरी अर्धाङ्गिनी जानियो। मेरे बिना वह ऐसे रहती होगी जैसे चकवे के बिना अकेली चकई और विरह के इन कठिन दिनों में वह थोड़ा बोलनेवाली बहुत दुःखी होगी जैसे शीत की मारी कमलिनी ॥

८३ रोते रोते उसकी आँखें सूज गई होंगी और तती स्वास लेते लेते होठों का रंग फीका पड़ गया होगा, खुले बालों में हाथ पै रक्खा हुआ उसका मुख ऐसा छविहीन दीखता होगा जैसे उनमन में मलिन चन्द्रमा ॥

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्य विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ॥
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिका पञ्जरस्था
कच्चिद्भर्त्तुः स्मरसि निभृते त्व हि तस्य प्रियेति ॥ ८४ ॥

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपद गेयमुद्गातुकामा ॥
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चित्
भूयो भूयः स्वयमपि कृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥ ८५ ॥

शेषान् मासान् विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीमुक्तपुष्पैः ॥
सयोग वा हृदयनिहितारम्भमासादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहे ह्यङ्गनानां विनोदाः ॥ ८६ ॥

---

८४ पुरा = सद्य ॥
बलिव्याकुला = देवताराधनेषु तत्परा ॥
निभृते = हे एकाकिनी, हे एकान्तवासिनी ॥

८५ मद्गोत्राङ्क = मम कुलचिह्नितम् ॥
स्वयमपि कृता = विस्मरणानर्हामपि ॥

८६ देहलीमुक्तपुष्पैः = प्रेषितकुशलार्थं मासे मासे देहल्या समर्पितानि पुष्पाणि तैः ॥

सोरठा

८४ यदपि गिरेगी मित्र बलि देती यह देखि तुहि
के लिखती मम चित्र बिरह कृशित अनुमान करि ॥
के कहुँ पूछति होइ पिँजरा बैठी सारिकहि
कबहू आवति तोहि सुधि प्यारी या नाह की ॥

८५ के धरि बैठी बीन मलिनबसन जघान पै
गायन काज प्रवीन अङ्कित पद मम गोत कुल ॥
अँसुवन भिजई रोइ कै बीना कों पोंछती
कैधो भूलति होइ फिर फिर सीखी तान हू ॥

८६ कै मन करन प्रतीत रहे महीना अवधि के
गिनि गिनि धरती मीत सुमन देहरी के चढ़े ॥
कै साधति सजोग मम आगम अनुमान करि
येही नारि-नियोग होत नाह के बिरह में ॥

---

८४ हे मेघ वह तुझे देखते ही मेरी ओर से निरास होकर गिर पड़ेगी। चाहे उस समय मेरी कुशलता के लिये काकबलि पूजन करती हो, चाहे विरह की पीड़ा में मेरा दुबलापन अनुमान करके मेरा ही चित्र बनाती हो, चाहे पिंजरे में बैठी हुई मैना से पूछती हो कि तुझे भी कभी प्यारे नाह की सुधि आती है॥

८५ चाहे वियोग की दशा में मैले वस्त्र पहने हुए बीन जाँघ पर रख कर मेरे कुल के गीत गाने बैठी हो और आंसुओं से भीगी बीना को पोछती हो, चाहे भली भाँति अभ्यास की हुई मूर्छना को भी बार बार भूलती हो ॥

८६ चाहे शाप की अवधि के रहे हुए महीने निश्चय करने के लिये धरती पर धर रख कर देहली के चढ़े हुए फूल गिनती हो (परदेशी की कुशल निमित्त महीने महीने देहली पर फूल चढ़ाये जाते हैं), चाहे अपने मन ही मन तुझे घर आया जान संजोग के उपचार करती हो क्योंकि पति के वियोग में स्त्री बहुधा येही धन्धे करती रहती है ॥

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुच निर्विनोदां सखीं ते ॥
मत्सन्देशै सुखयितुमल पश्य साध्वीं निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयना सन्नवातायनस्थः ॥ ८७ ॥

आधिक्षामां विरहशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ॥
नीता रात्रि क्षणमिव मया सार्द्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहजनितैरश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ ८८ ॥

नि श्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात् परुषमलक नूनमागण्डलम्बम् ॥
मत्सयोग क्षणमपि भवेत् स्वप्नजोऽपीति निद्राम्
आकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ ८९ ॥

---

८७ मत्सन्देशै सुखयितुमल = मम वार्ताभिस्तामानन्दयितुं समर्थं ॥

८९ शुद्धस्नानात् = तैलादिरहितस्नानात् ॥

चौपाई

८७ लगी रहति इन कामन प्यारी । दिन विरहादुख होत न भारी ॥
डरो अधिक रातिन दुख होई । करन काज जब काज न कोई ॥
तू मम दूत तासु हितकारी । रहियो बैठि अर्धनिशि बारी ॥
लखियो नारि पतिव्रत करती । विगतनींद शय्या करि धरती ॥

८८ चिन्तानिथित परी तन छोना । एक करोट सेज पतिहीना ॥
जिमि पूरब दिशि देत दिखाई । कलामात्र निकस्यो शशि आई ॥
छिन समान बीतलिहीं रतियाँ । मो सँग करत केलि रसबतियाँ ॥
रोइ रोइ अब तिनहि बितावति । विरहतप्त आँसू बरसावति ॥

८९ ताती स्वास भई तियमुख की । दायक मृदु होठन अति दुख की ॥
फूँकि फूँकि तिनसो सरकावति । रूखी अलक कपोलन धावति ॥
चाहति तनक नींद झुकि आवे । मति सपने अपनो पति पावे ॥
पे अँसुवा नैनन भरि लेहीं । लगन पलक छिन हू नहिं देहीं ॥

---

८७ दिन भर तो इन कामों में लगी रहने से उसे वियोग की विथा बहुत न व्यापती होगी परन्तु मुझे डर है कि रात में जब कोई काम नहीं रहता वह अति दुःख पाती होगी । तू मेरा सँदेसा पहुँचा कर उसे प्रसन्न करेगा, परन्तु आधी रात के समय खिड़की (बारी) में बैठ कर देखियो वह किस भाँति नींद त्याग भूशय्या पर पड़ी हुई पतिव्रत साधती है ॥

८८ विरह की चिन्ता में दुर्बल होकर धरती की सेज पर अकेली पड़ी हुई ऐसी दीखेगी मानो अँधेरे पाख की चौदस का चन्द्रमा निकला है और जो रात मेरे साथ रमण करने में छिन समान बीत जाती थी तिन्हें अब रो रो कर तत्ते आँसू गिराती हुई काटती होगी ॥

८९ लम्बी और तत्ती स्वास लेते लेते नए पल्लव समान उसके होठ सूख गए होंगे । उन्हीं स्वासों से मुख पर पड़ती हुई रूखी अलकों को बार बार हटाती होगी और मुझे सपने में देखने के लिये चाहती होगी कि पल भर भी नींद आ जाय परन्तु आँसू छिन मात्र भी सोने न देते होंगे ॥

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा या मयोद्वेष्टनीया ॥
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं
गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ ९० ॥

पादानिन्दोरमृतशिशिरान् जालमार्गप्रविष्टान्
पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं सन्निवृत्तं तथैव ॥
चक्षुः खेदात् सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥ ९१ ॥

सा सन्न्यस्ताभरणमबला कोमलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद्दुःखदुःखेन गात्रम् ॥
त्वामप्यस्रं जललवमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ ९२ ॥

९० दाम हित्वा = मालां त्यक्त्वा ॥

९१ स्थलकमलिनी = भूपद्मिनी न तु नीरकमलिनी ॥

९० बिरहा प्रथम दिवस मृगनैनी। बिन माला बाँधी जो बैनी॥
मेरे हि हाथन खोलन जोगू। शाप अन्त जब रहै न सोगू॥
भई कठोर गई न सँवारी। परति कपोलन पै दुखकारी॥
सरकावत फिर फिर अँगुरिन तें। नख न बने जिनके बहु दिन तें।
९१ शीतल अमृत किरनि हिमकर की। परति आइ झँझरिन बिच घर की॥
पूर्वप्रीति हित तिहि सग धावत। तुरत नैन पाछे हटि आवत॥
सजल पलक तिन ऊपर लावति। बस वियोग अतिशय दुख पावति॥
खन सोवति जागति सी खन में। भूमिकमलिनी जिमि उनमन में॥

दोहा

९२ सेज परे कोमल खरे बिन आभूषण गात।
राखति अबला होइगी परी बिकल निलखात॥
तेरेहु आँसू सखा देगी अवश बहाय।
सरस हृदय जन होत हैं बहुधा मृदुल स्वभाय॥

---

९० वियोग के पहले दिन जो बिना माला की बेनी बाँधी थी और जो शाप ■ अन्त पै मेरे ही हाथों से खुलेगी वह बेनी तब से शुद्ध नहीं की गई है, इस लिये कड़ी होगई होगी और कपोलों पर गिर कर दु:ख देती होगी, उसे प्यारी अपनी अँगुलियों से जिनके नुह बढ़ रहे हैं बार बार सरकाती होगी॥
९१ संयोग समय की प्रीति मान कर उसके दृग पहले तो झरोखों में पड़ी हुई चन्द्रकिरणों की ओर दौड़ते होंगे फिर वियोग के दु:ख में लौट आते होंगे और प्यारी उनको अपने सजल पलकों से ढाँकती हुई कुछ सोती कुछ जागती ऐसी दीखती होगी जैसे बादल में स्थलकमलिनी॥
९२ अपने कोमल शरीर को जिसके आभूषण उतार डाले हैं वह बड़े दु:ख से धारण करती होगी, उसकी दशा देख कर तू भी रोदेगा क्योंकि तू सरस-हृदय है (अर्थात् तुझ में जल भरा है) और सरस हृदय पुरुष बहुधा करुणामय होते हैं॥

जाने सख्यास्तव मयि मनःसम्भृतस्नेहमस्मात्
इत्थम्भूता प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ॥
वाचालं मां न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत् ॥ ९३

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ॥
त्वय्यासन्ने नयनमुपरि स्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाकुलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ९४ ॥

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरविरचितं त्याजितो दैवगत्या ॥
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः कनककदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥ ९५॥

---

९३ सुभगम्मन्यभाव = आत्मनः सुभगमानित्वम् ॥

९४ नयन = वाममिति शेषः ॥
वामभागस्तु नारीणां पुंसां श्रेष्ठस्तु दक्षिणः ।

१३ जानतु हूँ मोमें लगी वाके मन की प्रीति।
यातें प्रथम वियोग में ऐसी करतु प्रतीति॥
अपन बड़ाई करि कछू मैं न बजावतु गाल।
बेगि तुहू लखि लेहिगो मेरो कह्यो हवाल॥

१४ बिन अञ्जन सूनो भयो अलकन रोकी सैन।
बिन मदिरा भूल्यो सबै भ्रुविलास सुखदैन॥
दृग बाँयो मृगनयनि को हलिहै पहुँचत तोहि।
मीन झकोरयो जलज जिमि शोभा भासति मोहि॥

१५ वाम उरू वा वाम की मम नख अंक विहीन।
नित की मुक्ताकिंकिनी विधिवशात् तज दीन॥
सहराघन के जोग यह मेरे हाथन मीत।
कंचन-कदलीखम्भ लौं फरकेगी रँगपीत॥

---

१३ मुझे निश्चय है कि उसका मन मुझ में स्नेह रखता है, इसीलिये मैं जानता हूँ कि उसकी दशा ऐसी होगी जैसी मैंने कही है। तू यह मत समझ कि अपने को सुभग मान कर मैं अपनी बड़ाई करता हूँ, मैंने जो कुछ कहा है तू आप ही थोड़े काल में देख लेगा॥

१४ अञ्जन बिना नेत्र सूने होंगे, कपोलों पर बार बार अलक पड़ने से तिरछा देखना छुट गया होगा, मदिरा त्यागने से भौंहों का चमत्कार जाता रहा होगा। अब तू निकट पहुँचेगा तो उसका बायाँ नेत्र अच्छा सगुन दिखलाने को फड़केगा। उस समय ऐसी शोभा होगी मानो कमल को मछली ने हिलाया है॥

१५ उसकी बाईं जाँघ भी जिस पर मेरे नख के चिह्न मिट गए होंगे और बहुत दिनों की पहनी हुई तागड़ी दैवयोग से उतारी गई होगी और जिसको मैं अपने हाथों से सहलाता था ऐसे फड़केगी मानो सोने का वा केले का खम्भ हिलता है॥

९३ जानतु हूँ मोमें लगी वाके मन की प्रीति।
यातें प्रथम वियोग में ऐसी करतु प्रतीति॥
अपन बड़ाई करि कछू मैं न बजावतु गाल।
बेगि तुहू लखि लेहिगो मेरो कह्यो हवाल॥

९४ बिन अञ्जन सूनो भयो अलकन रोकी सैन।
बिन मदिरा भूल्यो सबै भ्रूविलास सुखदैन॥
हग बायो मृगनयनि को हलिहै पहुँचत तोहि।
मीन झकोरयो जलज जिमि शोभा भासति मोहि॥

९५ बाम उरू वा बाम की मम नख-अंक विहीन।
नित की मुक्ताकिंकिनी विधिवशात् तज दीन॥
सहरावन के जोग भए मेरे हाथन मीत।
कंचन-कदलीखम्भ लो फरकैगी रँगपीत॥

---

९३ मुझे निश्चय है कि उसका मन मुझ में स्नेह रखता है, इसीलिये मैं जानता हूँ कि उसकी दशा ऐसी होगी जैसी मैंने कही है। तू यह मत समझ कि अपने को सुभग मान कर मैं अपनी बड़ाई करता हूँ, मैंने जो कुछ कहा है तू आप ही थोड़े काल में देख लेगा॥

९४ अञ्जन बिना नेत्र सूने होंगे, कपोलों पर बार बार अलक पड़ने से तिरछा देखना छुट गया होगा, मदिरा त्यागने से भौंहों का चमत्कार जाता रहा होगा। अब तू निकट पहुँचेगा तो उसका बायाँ नेत्र अच्छा सगुन दिखाने को फड़केगा। उस समय ऐसी शोभा होगी मानो कमल को मछली ने हिलाया है॥

९५ उसकी बाईं जाँघ भी जिस पर मेरे नख के चिह्न मिट गए होंगे और बहुत दिनों की पहनी हुई बागड़ी दैवयोग से उतारी गई होगी और जिसको मैं अपने हाथों से सहलाता था ऐसे फड़केगी मानो सोने का वा केले का खम्भ हिलता है॥

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैव ॥
श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीना
कान्तोदन्तः सुहृदुपगत. सङ्गमात् किञ्चिदून ॥९९

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं 'तव सहचरो रामगिर्य्याश्रमस्थ. ॥
'अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वा वियुक्ता
'भूताना हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत्' ॥१००॥

---

९९ सम्भाव्य = सत्कृत्य ॥

१०० क्षयिषु करणेषु = नश्यमानेषु शरीरेषु ॥
यथास्यपि महाप्रलये विनश्यन्तीति भाव ॥

चौपाई

९९ इतनो कहत तोहि मम प्यारी । जिमि हनुमत कों जनकदुलारी ॥
सीस उठाय निरखि घन लेहै । प्रफुलित चित ह्वै आदर देहै ॥
सुनिहै तिहिँ विधि कान लगाई । तेरे बचन सुभग सुखदाई ॥
सुहृद हाथ तिय पियसुधि पावति । सो मिलाप तें कछु घटि भावति ॥

१०० मम बचनन निज बचन मिलाई । यों भासो कहियो समुझाई ॥
'क्षेम सहित भरता तिय तेरो । करत रामगिरि माहिं बसेरो ॥
'पूछत है तेरी कुशलाता । कहि विरहिनि अपनी तू बाता ॥
'प्रानी सबहि काल के भोगू । प्रथम कुशल ही पूछन जोगू' ॥

---

९९ जब तेरा ऐसा वचन सुनेगी तो वह सिर उठा कर तुझे देखेगी जैसे राम के दूत हनुमान को सीता जी ने देखा था और मन में वैसा ही आदर भी देगी और वैसा ही ध्यान लगा कर तेरा कहना सुनेगी । क्योंकि स्त्री को जो आनन्द पति के मिलाप से होता है उससे कुछ ही घाट उसका सँदेसा किसी मित्र के हाथों पाने से भी होता है ॥

१०० फिर मेरे वचनों को अपने वचनों से बनाकर उससे यों कहियो 'हे युवती तेरा पति रामगिरि पर्वत पर कुशल से रहता है और तेरी कुशल पूछता है । संसार में जितने देहधारी हैं काल सब के सिर पर है इसलिये पहले कुशल पूछना ही योग्य है' ॥

'अङ्गेनाङ्गं सुतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
'साम्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ॥
'दीर्घोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्त्ती
'सङ्कल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥ १०१ ॥

'शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
'कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ॥
'सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य'
'स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह' ॥ १०२ ॥

---

१०२ इदम् = वक्ष्यमाणम् ॥

घनाक्षरी

१०१ ' कीनो विधि बैर रोकि दीनो पन्थ आवन को
' दूर पै बसायो जाय केतो पछतायो है ॥
' चित्त की उमङ्ग तेरे अङ्गन मिलावे अङ्ग
' दूबरी तुहू तो यह दूबर सवायो है ॥
' विरहा तपाई देह दीरघ तू लेति स्वाँस
' दोऊ इन बातन में तोतें अधिकायो है ॥
' तेरे उतकण्ठ गात नीर जात नैनन तें
' बाढ़ी अभिलाषा वह आँसू झर लायो है ' ॥

छप्पय

१०२ ' प्रगट कहन हू जोग बात सखियन के आगे ॥
' तो मुख परसन लोभ कहतु हो कानन लागे ॥
' परयो दूरि अब जाय दृष्टि जहँ पहुँचि न पावति ॥
' श्रवन सुनन गति काम जहाँ तनकहु नहिँ आवति ॥
' स्वामि शाप-बस पाय के उत्कण्ठित निस दिन रहत ॥
' तोहि सुनावन बचन ये रचि रचि मो मुख तें कहत' ॥

---

१०१ 'विधाता ने बैर करके तेरे पति को परदेश का वास दिया है और घर आने 'का मार्ग रोक दिया है । मन की उमंग में वह अपने अंगों को तेरे अंगों से 'मिलाता है । तू दुबली है वह तुझसे भी अधिक दुबला है, तू विरह की 'ताप में लम्बी और तप्ती स्वाँस लेती है वह तुझ से भी अधिक लंबी और 'तप्ती स्वाँस लेता है । तू उत्कण्ठितगात है । उसमें तुझ से अधिक उत्क-'ण्ठिता है, तेरे आँसू गिरते हैं उसके आँसुओं की झड़ी लगी है' ॥
१०२ 'तेरे कपोल चूमने के लालच वह सखियों के सामने कहने की बात भी तेरे 'कानों में कहता था । अब इतना दूर पड़ा है कि न वहां दीठि पहुँचती है 'न कानों की गति है । तेरे सोच में उदास रहता है और तुझे सुनाने को 'ये पद बना कर उसने मुझे दिये हैं' ॥

' अङ्गेनाङ्गं सुतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
' सास्त्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ॥
' दीर्घोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
' सङ्कल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥ १०१ ॥

' शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्तात्
' कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ॥
' सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्यः
' त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह' ॥ १०२ ॥

---

१०२ इदम् = वक्ष्यमाणम् ॥

घनाक्षरी

१०१ 'कीनो विधि बैर रोकि दीनो पन्थ आवन कौ
'दूर पे बसायो जाय केतो पछतायो है ॥
'चित्त की उमङ्ग तेरे अङ्गन मिलावे अङ्ग
'दूबरी तुहू तो वह दूबर सवायो है ॥
'विरहा तपाई देह दीरघ तू लेति स्वाँस
'दोऊ इन बातन में तोतें अधिकायो है ॥
'तेरे उतकण्ठ गात नीर आत नैनन तें
'बाढ़ी अभिलाषा वह आँसू झर लायो है' ॥

छप्पय

१०२ 'प्रगट कहन हू जोग बात सखियन के आगे ॥
'तो मुख परसन लोभ कहतु हो कानन लागे ॥
'परयो दूरि अब आय दृष्टि जहँ पहुँचि न पावति ॥
'श्रवन सुनन गति काम जहाँ तनकहु नहिं आवति ॥
'स्वामि शाप-बस पाय के उत्कण्ठित निस दिन रहत ॥
'तोहि सुनावन बचन ये रचि रचि मो मुख तें कहत' ॥

---

१०१ 'विधाता ने बैर करके तेरे पति को परदेश का वास दिया है और घर आने
'का मार्ग रोक दिया है। मन की उमंग में वह अपने अंगों को तेरे अंगों से
'मिलाता है। तू दुबली है वह तुझ से भी अधिक दुबला है, तू विरह की
'ताप में लम्बी और तची श्वांस लेती है वह तुझ से भी अधिक लंबी और
'तची श्वांस लेता है। तू उत्कण्ठितगात है। उसमें तुझ से अधिक उत्क-
'ण्ठिता है, तेरे आँसू गिरते हैं उसके आँसुओं की झड़ी लगी है' ॥

१०२ 'तेरे कपोल चूमने के लालच वह सखियों के सामने कहने की बात भी तेरे
'कानों में कहता था। अब इतना दूर पड़ा है कि न वहां दृष्टि पहुँचती है
'न कानों की गति है। तेरे सोच में उदास रहता है और मुझे सुनाने के
'ये पद बना कर उसने मुझे दिये हैं' ॥

" श्यामास्वङ्ग चकितहरिणीप्रेक्षिते दृष्टिपातान्
" गण्डच्छाया शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ॥
" उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
" हन्तैकस्य क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति" ॥१०३॥

" त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागैः शिलायाम्
" आत्मानं ते चरणपतित यावदिच्छामि कर्त्तुम् ॥
" अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
" क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गम नौ कृतान्त " ॥१०४॥

" धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
" दूरीभूतं प्रतनुमपि मा पञ्चबाणः क्षिणोति ॥
" घर्म्मान्तेऽस्मिन् विगणय कथं वासराणि व्रजेयुः
" दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्य्यातपानि" ॥१०५॥

---

३ श्यामा = प्रियङ्गुलता ॥

०४ कृतान्त = दैवम् ॥

०५ घर्मान्ते = घर्म्मावसाने ॥
दिक्संसक्त प्रविततघनव्यस्तसूर्य्यातपानि = दिक्षु संलग्ना ये मेघा व्यस्तास्तै-
र्वारितातपानि वासराणि ॥

शिखरिणी

१०३ "मिले भामा तेरो सुभग तन श्यामा लतन में।
"मुखाभा चन्दा में चकित हरिणी में दृग मिलें।
"चलोर्मी में भौंहें चिकुर बरही की पुच्छन में।
"न पै ह्वाँ काहू में मुहि सकल तो आकृति मिलै" ॥

१०४ "शिला पै गेरू तें कुपित ललना तोहि लिखि कै।
"धरयो जौलों चाहूँ तन अपन तेरे पगन में।
"चलें आँसू तोलों दृगनमग रोकें उमगि के।
"नहीं धाता घाती चहतु हम याहू विधि मिलें" ॥

१०५ "परयो हूँ मैं तेरे सुखद मुख तें दूर युवती।
"खरो छेदे मेरे कृशित तन हूँ को रतिपती।
"कटें कैसें प्यारी दिवस अब वर्षा ऋतु लगी।
"मिटी भानुज्ज्वाला उमडि घनमाला नभ चढ़ी" ॥

---

१०३ "हे प्यारी तेरे कोमल शरीर की शोभा प्रियगु लताओं में मिलती है, मुख
"की कान्ति चन्द्रमा में, आँखों की चितवन चकित हरिणियों में, भौंहों की
"मरोड़ नदी की चंचल तरंगों में, केशों की छवि मोरपुच्छ में, परन्तु हाय
"तेरे सब अंगों की मूरत कहीं नहीं मिलती" ॥

१०४ "तुझ मानवती का चित्र पत्थर पर गेरू से लिख कर जब तक मैं अपने को
"तेरे चरणों में रखना चाहता हूँ तब तक आँखों में आँसू भर आते हैं और
"दीठ रुक जाती है। इससे जान पड़ा कि हमारे चित्रमिलाप को भी विधाता
"नहीं सह सकता" ॥

१०५ "मैं तेरे सुगन्धित मुख से दूर हूँ फिर भी कामदेव मेरे दुबले शरीर को अपने
"बाणों से छेदता है। अब वर्षा ऋतु लगी है, बादल उमड़े हैं, धूप मन्दी
"होगई है, प्यारी ये दिन कैसे कटेंगे" ॥

" श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षिते दृष्टिपातान्
" गण्डच्छाया शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान् ॥
" उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
" हन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति" ॥१०३॥

" त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्
" आत्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम् ॥
" अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
" क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्त " ॥१०४॥

" धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
" दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पञ्चबाणः क्षिणोति ॥
" घर्मान्तेऽस्मिन् विगणय कथं वासराणि व्रजेयु'
" दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्य्यातपानि" ॥१०५॥

---

१०३ श्यामा = प्रियङ्गुलता ॥

१०४ कृतान्त = दैवम् ॥

१०५ घर्मान्ते = घर्म्मावसाने ॥
दिक्संसक्त प्रविततघनव्यस्तसूर्य्यातपानि = दिक्षु संलग्ना ये मेघा व्यस्तैस्तै-
वारितातपानि वासराणि ॥

शिखरिणी

१०३ "मिले भामा तेरो सुभग तन श्यामा लतन में।
"मुखाभा चन्दा में चकित हरिणी में दृग मिलें।
"चलोर्मी में भौंहें चिकुर बरही की पुछन में।
"न पै ह्याँ काहू में मुहि सकल तो आकृति मिले" ॥

१०४ "शिला पे गेरू तें कुपित ललना तोहि लिखि के।
"धरयो ओलों चाहूँ तन अपन तेरे पगन में।
"चलें आँसू तौलों दृगनमग रोकें उमगि के।
"नहीं धाता घाती चहतु हम याहू विधि मिलें" ॥

१०५ "परयो हूँ मैं तेरे सुखद मुख तें दूर युवती।
"खरो छेदे मेरे कृशित तन हूँ को रतिपती।
"कटें कैसें प्यारी दिवस अब वर्षा ऋतु लगी।
"मिटी भानुज्ज्वाला उमडि घनमाला नभ चढी" ॥

---

१०३ "हे प्यारी तेरे कोमल शरीर की शोभा प्रियगु लताओं में मिलती है, मुख
" की कान्ति चन्द्रमा में, आँखों की चितवन चकित हरिणियों में, भौंहों की
"मरोड़ नदी की चचल तरंगों में, केशों की छवि मोरपुच्छ में, परन्तु हाय
"तेरे सब अंगों की मूरत कहीं नहीं मिलती" ॥

१०४ "तुझ मानवती का चित्र पत्थर पर गेरू से लिख कर जब तक मैं अपने को
"तेरे चरणों में रखना चाहता हूँ तब तक आँखों में आँसू भर आते हैं और
"दीठ रुक जाती है। इससे जान पड़ा कि हमारे चित्रमिलाप को भी विधाता
"नहीं सह सकता" ॥

१०५ "मैं तेरे सुगन्धित मुख से दूर हूँ फिर भी कामदेव मेरे दुबले शरीर को अपने
"बाणों से छेदता है। अब वर्षा ऋतु लगी है, बादल उमडे हैं, धूप मन्दी
"होगई है, प्यारी ये दिन कैसे कटेंगे" ॥

"मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो
"र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु ॥
"पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
"मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति" १०६ ॥

"भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणां
"ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ॥
"आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
"पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति" ॥ १०७ ॥

"सङ्क्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
"सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ॥
"इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
"गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः" ॥ १०८ ॥

---

६ स्थलीदेवता = वनदेवता ॥
तरुकिसलयेषु = वृक्षपत्रेषु ॥
यथा ॥ महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि ।
देशभ्रंशो महादुःखं मरणञ्च भवेद् ध्रुवम् ॥

१०६ "जु तू प्यारी मोको मिलति कहुँ भावी स्वपन में।
"भुजा ऊँची दोऊ करि चहतु लागूँ तव गरें।
"दशा ऐसी मेरी निरखि वनदेवा दृग भरें।
"बड़े ढारें आंसू पतन पर मोती जिमि झरें" ॥

दोहा

१०७ "दक्खिन मुख आवति चली मिलि तुसार सँग ब्यारि।
"देवदारुपुट तोरती तिहिँरस सोंधो सारि॥
"सो अपने भरि अङ्क मैं या हित लेतु लगाय।
"नागरि तो तन परसि मति मो तन परसे आय" ॥

१०८ "चाहतु भारी रैन हू छिन समान कटि जायँ।
"दिवस भोर तें साँझ लो बिन सन्ताप नसायँ॥
"करि करि दुर्लभ आस ये मो मन भयो बिहाल।
"तेरे कठिन बियोग में सुनि मृगनैनी बाल" ॥

---

०६ "जो भाग्य से कभी तू मुझे स्वप्न में मिल जाती है तो तुझे कंठ लगाने को "मैं बाँह पसारता हूँ उस समय मेरी दीनदशा देख वनदेवताओं को ऐसी "दया आती है कि वे वृक्षों के पत्तों पर बड़े बड़े आँसू गिराते हैं (पत्तों पर "इसलिये कि पृथ्वी पर देवता या महात्मा का आँसू गिरने से प्रजा को "दुःख उपजता है)" ॥

०७ "उत्तर से जो ठंढी पवन देवदारु की कोंपलें तोड़ती और उनके दूध की "सुगन्धि लेती हुई आती है उसे मैं अपने अंक में भरता हूँ क्योंकि "आशा है कि कदाचित् तेरे ही शरीर को छूकर आई हो" ॥

०८ "तेरे वियोग में मेरा मन ऐसा दीन हो गया है कि दुर्लभ बातों की भी "प्रार्थना करता है, अर्थात् चाहता है किसी जतन से रात पल बराबर हो "जाय और दिन सबेरे से साँझ तक किसी समय दुःखदाई न हो" ॥

"नन्वात्मानं बहुविगणयन्नात्मना नावलम्बे
"तत् कल्याणि त्वमपि सुतरां मा गमः कातरत्वम् ॥
"कस्यात्यन्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा
"नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण" ॥ १०९ ॥

"शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
"मासानेतान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥
"पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
"निर्वेक्ष्याव परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु" ॥ ११० ॥

"भूयश्चापि त्वमसि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
"निद्रां गत्वा किमपि रुदती सत्वरं विप्रबुद्धा ॥
"सान्तर्हासं कथितमसकृत् पृच्छतश्च त्वया मे
"दृष्टस्स्वप्ने कितव रमयन् कामपि त्वं मयेति" ॥ १११ ॥

---

१०९ बहुविगणयन् = शापान्ते सत्येवमेवं करिष्यामीत्यावर्त्तयन् ॥
अवलम्बे = धारयामि ॥

११० गुणित = बहुलीकृतम् ॥
निर्वेक्ष्याव = भोक्ष्यावहे ॥

सवैया

१०९ "मैं अपनो तन राखि रह्यो धरि के अभिलाष हिये बिच भारी।
"धीरज तूहु धरे किनि भामिनि जाइ मरी मति सोच की मारी।
"काहु पै दुख सदा न रह्यो न रह्यो सुख काहु के नित अगारी।
"चक्रनिमी सम दोऊ फिरें तर ऊपर आपनी आपनी बारी"॥

११० "मम शाप की औधि मिटे तबही जब शेष की सेज पै जागें हरी।
"इन चार महीनन को अब तू दृग मीचि बिताय दै भागिभरी।
"मिलिहैं फिर कातिकी रातिन में हम देखिहै चांदनी चारु खरी।
"बुझि जायगी हौंस सबै जिय की बिरहा दुख जो दिनदूनी करी"॥

१११ "और कहूँ सुन एक दिना हियरा लगि मेरे तू सोइ रही।
"आवत नींद न देर भई जगि औचक रोइ उठी तब ही।
"पूछी जु मैं धन बारहि बार तो तैं मुसकाइ के ऐसें कही।
"देखतिही सपने छलिया तुमने एक सौति की बाँह गही"॥

---

१०९ "हे प्यारी मैं तेरे मिलने के बड़े बड़े चाव करके अपने प्राण रख रहा हूं।
"तू भी धीरज धर। दुःख सुख सदा किसी को एकसा नहीं रहता। ये तो
"रथ की नेमि की भांति हिरते फिरते रहते हैं"॥

११० " मेरे शाप की अवधि में चार महीने और रहे हैं। जब देवठान होगा हम
"फिर सुख से शरद की चांदनी रातों में मिलेंगे और जो मिलने की अभि-
"लाषा हमारे हृदयों में वियोग ने बहुत बढ़ा दी है वह पूरी होगी। इन
"महीनों को तू आंख मीच कर बिता दे"॥

१११ "एक दिन की सुधि मैं तुझे दिलाता हूँ कि तू मेरे गले लगकर सोती
"थी। अकस्मात् जग कर रोने लगी। मैंने बार बार पूछा कि क्यों रोई तैंने
"हँस कर उत्तर दिया कि हे छलिया सपने में तुझे किसी स्त्री से मिलते
"देखा था"॥

"एतस्मान्मा कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
"मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्वासिनी भू" ॥
"स्नेहानाहुः किमपि विरहव्यापदस्ते ह्यभोग्यात्
"इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति" ॥ ११२ ॥

"कच्चित् सौम्य व्यवसितमिद बन्धुकृत्य त्वया मे
"प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरता तर्कयामि ॥
"निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्य
"प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियेव" ॥११३॥

आश्वास्यैनां प्रथमविरहादुग्रशोका सखीं मे
शैलादस्मात् त्रिणयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्त ॥
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रात कुन्दप्रसवशिथिल जीवित धारयेथा ॥११४॥

११२ कौलीन = जनप्रवाद ॥ एतावता कालेन परासुर्नोचेदागच्छतीति भाव ॥

११३ प्रत्यादेशात् = अनङ्गीकारात् ॥
धीरता = तूष्णीम्भावम् ।
प्रत्युक्तमिति = नीचो वदति न कुरुते न वदति सजन करोत्येवेति भाव ॥

११२ "पाय पत्र इतने कुशलैं जानिये जीवत है पति तेरो।
"लोग तुम्हरे की चरचा सुने तू विश्वास तजे मति मेरो।
"नेह की रीति कहेन कहौं कुम्हलात कछू जब मीत न नेरो।
"भोग बिना अभिलाष बढ़ावत चिह्न लखें बढ़ि जात घनेरो" ॥

दोहा

११३ बन्धु काज मम तैं इतो स्वीकृत कियो कि नाहिं।
मदन धारि तव मौन तें नैक न मो मन माहिं॥
तू बिन बोलेहु बरसि मेटत चातक प्यास।
सज्जन जन उत्तर बिना पुजवत याचक आस॥

चौपाई

११४ हे नीरज मेरी पतिनी को। प्रथम विरह-व्याकुल सजनी को॥
चलियो तुरत जलद या गिरि तें। खोदी त्र्यम्बक वृषभ शिखरि तें॥
लाइ प्रिया की कछुक निसानी। अरु वा मुख की कुशल कहानी॥
मेरेहु प्रान राखियो ताता। भये मलिन जिमि कुन्द प्रभाता॥

---

११२ "हे प्यारी इन पत्रों से तू निश्चय रख कि मैं जीता हूँ और जो पास "पड़ोसी चरचा करें कि जीता होता तो अब तक आजाता अथवा कुछ "सँदेसा भेजता तो उनकी बात पर तू विश्वास मत कीजो। नेह का स्वभाव "है कि वियोग में कुछ मलिन हो जाता है परन्तु फिर भी चाव को बढ़ाता "है और प्यारे का पता पाकर बहुत बढ़ जाता है" ॥

११३ हे मेघ मेरे सँदेसे का पहुँचाना तैंने स्वीकार किया हो वा न किया हो, तेरे चुप रहने का कारण मैं यह नहीं समझता हूँ कि मेरी प्रार्थना तैंने अंगीकार नहीं की, क्योंकि तू तो बिना गरजे भी चातकों की प्यास बुझाता है और सज्जन पुरुष उत्तर दिये बिना ही याचकों की आसा पूरी कर देते हैं ॥

११४ मेरी स्त्री को जो पहले ही विरह की विथा में फँसी है मेरे सँदेसे से ढाढ़स देकर और कैलाश पर्वत से जिसकी शिखर को शिवजी का नांदिया अपने सींगों से खोदा करता है, उतर कर तू मेरे पास आना और उसकी कुछ निसानी लाना। जैसे मेरा सँदेसा पहुँचा कर उसके प्राण बचावेगा उसकी कुशल सुनाकर मेरे भी कुम्हलाते हुए प्राण बचा लीजो ॥

एतत्कृत्वा प्रियसमुचितं प्रार्थनं चेतसो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या ॥
इष्टान् देशान् विचर जलद प्रावृषा सम्भृतश्री·
मा भूदेव क्षणमपि न ते विद्युता विप्रयोग· ॥ ११५ ॥

तं संदेशं जलधरवरो दिव्यवाचाऽऽचचक्षे
प्राणास्तस्या जनहितरतो रक्षितु यक्षवध्वा· ॥
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमना साऽपि तस्थौ स्वभर्त्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥ ११६ ॥

श्रुत्वा वार्ता जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्य
शापस्यान्तं सदयहृदयस्संविधायास्तकोप ॥
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥ ११७ ॥

इत्युत्तरमेघ ।

---

११५ प्रावृषा सम्भृतश्री = वर्षाभिरुपचितशोभा ॥
विद्युता = कलत्रेणेति शेष ॥

११५ कै बिरही कै सखा सुमिरि के। दयादृष्टि मो ऊपर करिके॥
पूरन कीजो बिनती मोरी। सब बिधि उचित सुहृदजन केरी॥
चलियो फिर मन में जित आवे। पावस-सुखमा सङ्ग सुहावे॥
पलहु न बिज्जु बिरह होइ तोकों। जैसो भयो शापबस मोकों॥

दोहा

११६ जक्षवधू कुशलातहित धरि हिय मित्र उछाह।
कह्यो सँदेसो जाय याइ दिव्य बचन जलवाह॥
पाइ कुशल भरतार की हरषी वह मन माहिं।
करि सज्जन सों बीनती को तुष्ट्यो जग नाहिं॥

शिखरिणी

११७ सुनी एती बातें धनपति जु भाषी जलद की।
दया जी में आई रिस मिटत ताही छिन भई।
मिलाये वे दोऊ बिपति हरिलीनी शपथ की।
सदा भोगो बाञ्छाफल हरपि यों आशिस दई॥

इति उत्तरमेघ।

---

११५ मुझे बिरही जान कर अथवा अपना मित्र समझ कर दयासहित मेरा यह काम कर दीजो। यह मित्रों के करने ही योग्य है। इसको भुगता कर जहां जी चाहे बरषा से शोभा पाता हुआ फिरियो और जैसा वियोग मुझे अपनी स्त्री से हुआ है तुझे पल भर भी तेरी प्यारी बिजली से मत हो॥

११६ यक्षिणी के प्राण बचाने को मित्र काज के उत्साही बादल ने वह सँदेसा उस को देववाणी से सुनाया। पति की कुशल सुन कर वह भी प्रसन्न हुई। सज्जनों से किसकी प्रार्थना सफल नहीं हुई॥

११७ अलका में जब मेघ के कहे हुए इस सँदेसे की चरचा फैली और कुबेर के भी कान तक पहुँची तो उसके हृदय में करुणा आई, कोप दूर हो गया। फिर तुरन्त उसने शाप की अवधि मिटा कर उस यक्षिणी को मिलाया और असीस दी कि सदा मनवाञ्छित फल भोगते रहो॥

॥ इति शुभम्॥